संघ–विचार
वर्तमान संदर्भ में

द. बा. ठेंगडी

(केवल व्यक्तिगत उपयोग के लिए)

मूल्य रु. ३ /–

हिन्दू राष्ट्र — एक सनातन सत्य

श्री दत्तात्रय बाळकृष्ण ठेंगडी

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्कारों तथा स्व. श्रीगुरुजी के निकट सान्निध्य से गुणसंपन्न नेतृत्व सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में निर्माण हुआ है। उनमें श्री द. बा. ठेंगडी का भी प्रमुख स्थान है। बुद्धिमान, अध्ययनशील, तत्त्वचिंतक, कुशल संगठक और राष्ट्र–समर्पित जीवन, इन शब्दों में उनका वर्णन कर सकते हैं। श्री ठेंगडीजी संघ के प्रचारक हैं।

श्री ठेंगडीजी भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक हैं और उस संगठन का आज जो विशाल रूप दिखायी देता है वह उनके अथक प्रयासों का ही फल है। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, भारतीय किसान संघ, सहकार भारती आदि कार्यों में भी उनका प्रमुख योगदान है। इन विभिन्न कार्यों में कार्यरत रहते हुये भी, संघकार्य से उनका संबंध अटूट है।

अपने देश में चलनेवाले सभी कार्यों का आधार, हिंदु जीवन दृष्टि रहे, इस दृष्टि से उन्होंने विपुल लेखन भी किया हैं।

श्री ठेंगडीजी सन १९६४ में राज्यसभा के सदस्य चुने गये। सन १९७० में वे दुबारा राज्यसभा में चुने गये। संसदीय कार्यकाल से ही उन्हें विदेशों के मजदूर आंदोलनों का अध्ययन करने का अवसर मिला। सन १९६८ की सोवियत संघ की यात्रा इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण रही। सन १९७७ में जिनेवा में

दो शब्द

मा. दत्तोपंत ठेंगडी की वक्तृत्वपूर्ण विषय प्रतिपादन-शैली सर्वत्र सुपरिचित है। स्वयंसेवकों को विषय समझाने की उनकी विशेषता अपूर्व है।

संघ की विचारधारा एवं कार्यपद्धति का प्रतिपादन तथा पंजाब जैसे अशांत क्षेत्र में स्वयंसेवकों का कर्तव्य, आदि विषयों के संबंध में शंका-समाधान हेतु नागपुर के प्रमुख स्वयंसेवकों के सम्मुख दि. ७ और [illegible] दिसंबर १९८६ को उनके तीन भाषणों का आयोजन किया गया था। वह प्रतिवृत्त इस पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया है।

विश्वास है इस पुस्तिका का सर्वत्र स्वागत होगा।

[illegible]

बौद्धिक विभाग
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
नागपुर

मुद्रक— नाग मुद्रणालय, रुईकर मार्ग, नागपुर-२

श्री दत्तात्रय बाळकृष्ण ठेंगडी

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्कारों तथा स्व. श्रीगुरुजी के निकट सान्निध्य से गुणसंपन्न नेतृत्व सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में निर्माण हुआ है। उनमें श्री द. वा. ठेंगडी का भी प्रमुख ान है। बुद्धिमान, अध्ययनशील, तत्त्वचिंतक, कुशल संगठक और राष्ट्र–समर्पित जीवन, इन शब्दों में उनका वर्णन कर सकते हैं। श्री ठेंगडीजी संघ के प्रचारक हैं।

श्री ठेंगडीजी भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक हैं और उस संगठन का आज जो विशाल रूप दिखायी देता है वह उनके अथक प्रयासों का ही फल है। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, भारतीय किसान संघ, सहकार भारती आदि कार्यों में भी उनका प्रमुख योगदान है। इन विभिन्न कार्यों में कार्यरत रहते हुये भी, संघकार्य से उनका संबंध अटूट है।

अपने देश में चलनेवाले सभी कार्यों का आधार, हिंदु जीवन दृष्टि रहे, इस दृष्टि से उन्होंने विपुल लेखन भी किया है।

श्री ठेंगडीजी सन १९६४ में राज्यसभा के सदस्य चुने गये। सन १९७० में वे दुबारा राज्यसभा में चुने गये। संसदीय कार्यकाल से ही उन्हें विदेशों के मजदूर आंदोलनों का अध्ययन करने का अवसर मिला। सन १९६८ की सोवियत संघ की यात्रा इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण रही। सन १९७७ में जिनेवा में

आयोजित अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने का अवसर उन्हें मिला।

ऑल चायना फेडरेशन ऑफ ट्रेड युनियन्स के निमंत्रण पर भा. म. सं. का प्रतिनिधी मंडल १९८५ में श्री ठेंगडीजी के नेतृत्व में चीन में गया था। २४-४-८५ को पेकींग रेडिओ द्वारा उनका भाषण भी प्रसारित किया गया था।

आयोजित अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने का अवसर उन्हें मिला।

ऑल चायना फेडरेशन ऑफ ट्रेड युनियन्स के निमंत्रण पर भा. म. सं. का प्रतिनिधी मंडल १९८५ में श्री ठेंगडीजी के नेतृत्व में चीन में गया था। २४-४-८५ को पेकींग रेडिओ द्वारा उनका भाषण भी प्रसारित किया गया था।

ॐ

1

हिन्दु-राष्ट्र : एक सनातन सत्य

चिंतन आवश्यक

आज देश की परिस्थिति कठिन अवश्य है। कुछ लोगों को संघ के बारे में चिंता होती है। परन्तु हम सोचें कि हम रोज जो प्रार्थना करते हैं, उसमें "प्रभो शक्तिमन्" और "त्वदीयाय कार्याय बद्धा कटीयम्" यह हम श्रद्धा से कहते हैं, तो हमें चिंता क्यों हो ? हम भगवान से कहते हैं कि, हम आपके कार्य के लिए ही कटिबद्ध हैं। ईमानदारी से यदि हम सोचते हैं कि यह ईश्वरी कार्य है, तब तो वह यशस्वी होकर रहेगा, ऐसा विश्वास हमारे मन में रहे। फिर भी यह संघकार्य यशस्वी हो, इस हेतु चिंतन, सतर्कता, सक्रियता, स्वार्थत्याग और आत्मार्पण की आवश्यकता है। यह कितनी मात्रा में हम करते हैं, इसकी चिंता हमें अवश्य करनी चाहिये।

आपात्स्थिति के समय एक स्वयंसेवक ने मुझ से कहा था कि, "परिस्थिति इतनी कठिन है कि संघ का क्या होगा इस बारे में आपके मन पर बडा दबाव होगा।" मैंने कहा, "मैं कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र बंबई ले जा रहा हूं। जहां वे पहुंचाना हैं वहां ठीक ढंग से कैसे पहुंचा सकूंगा, यही मुझे चिंता है। संघ का क्या होगा और देश पर क्या आपत्ति आ सकेगी यह प्रेशर मुझपर नहीं है।" जिस प्रकार सेना की व्यूहरचना क्या हो

इसका विचार कमाण्डर–इन–चीफ करता है, प्लैटून कमाण्डर नहीं, या किसी कंपनी की लाभ–हानि का विचार मैनेजिंग डायरेक्टर करते हैं न कि सेल्समन । उसी प्रकार संघ कार्य यदि भगवान का कार्य है, तो उसकी चिंता हमारे विचार का विषय नहीं है । भगवान ने स्वयं कहा है कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है उस समय "संभवामि युगे युगे ।" ग्लानि का अर्थ है बेहोशी, मृत्यु नहीं । धर्मग्लानि के समय हर युग में भगवान अवतीर्ण होंगे का सरल अर्थ है कि बेहोशी बार बार होगी और उसे नष्ट करने वे सफल प्रयास करेंगे । हम अपना कर्तव्य पूर्ण श्रद्धा से और सर्वस्वार्पण वृत्ति से करें, इसी की हम चिंता करें । "यतो धर्मस्ततो जयः" ऐसा भी भगवान ने कहा है । इसलिये कार्य सफल होगा इस विषय में हमें चिंता नहीं है ।

स्वयंसेवक के मन में परिस्थिति के प्रभाव के कारण चिंता नहीं, परन्तु दुःख का अनुभव उचित और स्वाभाविक है । हम हिंदुराष्ट्र के अंगभूत हैं । पू. श्रीगुरुजी का अनुभव था कि, अपने देश में कहीं कुछ गडबड या किसी प्रकार आक्रमण हुआ तो उनको उसकी अनुभूति होती थी । चिनी आक्रमण के समय, जब सरकार के गुप्तचर विभाग को उसका पता नहीं था, उनको अनुभूति हुई थी । आम सभा में उन्होंने वैसा कहा भी था । उनके जैसी हृदय की श्रेष्ठ अवस्था हम लोगों की नहीं है । परंतु यदि हिंदुराष्ट्र पर संकट आता है तो उसी प्रकार किंतु बहुत कम मात्रा में, हम अस्वस्थ होते हैं यह स्वाभाविक ही है ।

जनता की अपेक्षाओं के प्रति हमारा दृष्टिकोण

और एक प्रकार की अस्वस्थता कुछ स्वयंसेवक अनुभव करते हैं । अपने संपर्क में आनेवाले लोग जब कहते हैं कि भाई,

संघ के बारे में जनता की अपेक्षाएं क्या हैं, यह भी सोचो। सर्व-समावेशक विचार करते समय (In our total scheme of think-ing) जनता का महत्त्व है। इस कारण जनता की अपेक्षाओं के विषय में सोचते समय कुछ स्वयंसेवक अस्वस्थ होते हैं।

संघ की परिकल्पना में संपूर्ण हिंदुराष्ट्र और संघ समव्याप्त है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संघ संपूर्ण हिंदुराष्ट्र के साथ एकात्म है। इसी कारण हरेक हिंदु को हम स्वयंसेवक मानते हैं। जो संघस्थानपर पहुंच गये वे प्रत्यक्ष स्वयंसेवक हैं और जिनको संघस्थानपर पहुंचने में देर है वे बीजभूत स्वयंसेवक हैं। इसलिये हरेक की भावना का विचार करना हमें उचित ही है। परन्तु जनता की अपेक्षा के नामपर, किसी के कुछ भी कहने पर हमें विचलित (disturb) नहीं होना चाहिये। अपना काम-धंधा आराम से करनेवाले, अखबार में समाचार पढकर, यदि चाय पीते-पीते प्रचारक को पूछते हैं कि, "पंजाब और असम में जो हो रहा है, वहां तुम्हारे संघवाले क्या हवा में डंडे घुमा रहे हैं?" इससे हमें बेचैन होने का कारण नहीं है। पूछनेवाले ने पंजाब और असम के बारे में अध्ययन किया है, खूब सोचा है ऐसी बात नहीं है। समग्र देश का उद्धार करने हेतु उनकी दीर्घ-कालीन सोची हुई नीति या योजना (Long range strategy or planning) नहीं है। अपनी दुकान, मकान और बैंक बैलन्स संभालते समय अखबार में एक-दो शीर्षक (headlines) पढकर चाय पीते हुए पूछना यह अलग बात है। इस प्रकार की आकस्मिक टिप्पणियों (casual remarks) से चिंतित हो इतना हमारा स्वयंसेवक अति भावुक (touchy) न हो।

संघकार्य सर्वंकष योजना

हम जानते हैं कि संघ का निर्माण किसी तात्कालिक घटना की प्रतिक्रिया के रूप में नहीं हुआ है। इसके पीछे बहुत बडी तपश्चर्या, वडा गहन चिंतन रहा है। संघ–निर्माता पू. डॉक्टरजी जन्मजात देशभक्त थे। अंग्रेजी साम्राज्य को उखाडने का प्रयास बाल्यावस्था से ही वे करते रहे थे। उस समय काँग्रेस, हिंदु-महासभा, क्रांतिकारी आदि जो संस्थाएं और आंदोलन थे, सब में उन्होंने स्वयं हिस्सा लिया था। १९२० के काँग्रेस के अखिल भारतीय नागपुर अधिवेशन में स्वागत समिति के वे सक्रिय कार्यकर्ता थे। कांग्रेस के लक्ष्य का असंदिग्ध प्रतिपादन होना चाहिये ऐसा उनका मत था और इसलिये उनके आग्रह पर ही, स्वाधीनता प्राप्त कर, हिंदुस्थान में गणराज्य की स्थापना और विश्व के सभी पराधीन देशों की पूंजीवाद के चंगुल से मुक्तता, ये द्विविध लक्ष्य काँग्रेस के सम्मुख हैं, यह घोषित करने का प्रस्ताव स्वागत समिति ने विषय नियामक समिति (Subjects Committee) के पास भेजा था। विविध विचारधाराओं का और अनेकविध कार्यों का प्रत्यक्ष अध्ययन, साथ ही स्वयं के गहन चिंतन के फलस्वरूप उन्होंने १९२५ में संघ की स्थापना की।

बंगाल के त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती क्रांतिकारी अनुशीलन समिति के एक ज्येष्ठ नेता थे और पू. डॉक्टरजी उसके सक्रिय कार्यकर्ता रह चुके थे। उनका त्रैलोक्यनाथजी के साथ अनेक बार विचार–विनिमय हुआ करता था। त्रैलोक्यनाथजी के देहावसान के पूर्व उनसे मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। उन्होंने मुझे बताया कि १९१६ में ही डॉक्टर हेडगेवारने उनसे कहा था कि स्वराज्यप्राप्ति तो होनी ही चाहिये। परंतु यह

अपना अंतिम लक्ष्य नहीं हो सकता। जबतक हिंदुस्थान का प्रत्येक मनुष्य सुसंस्कारित नहीं होता तबतक स्वराज्यप्राप्ति के बाद भी गडबडी हो सकती है। और संभवतः संस्कार करने का यह काम मुझे ही करना पडेगा। १९१६ से ही पू. डॉक्टरजी का चिंतन इस दिशा में चल रहा था।

संघकार्य के सिद्धांत, लक्ष्य और कार्यपद्धति एक सुविचारित सर्वंकष योजना (all-out scheme) है। इसके कारण हमें संघ के बारे में चिंता नहीं है। हिंदु समाज में विघटन-प्रवृत्ति की बिमारी पुरानी है। उसे ठीक करने के लिये संघ का निदान ठीक है, उपाययोजना भी ठीक है यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है। परंतु बुखार रहने पर मीठी चीज भी कडवी लगती है। बिमारी पुरानी होने के कारण बहुत लम्बी अवधि तक दवा लेनी पडती है। जिनको सत्ता-लिप्सा का बुखार है उनको संघ द्वारा बतायी गयी अच्छी बातें भी कडवी लगती हैं। परंतु विघटन की बिमारी ठीक करने के लिये गहन चिंतन के फलस्वरूप प्राप्त यह संघकार्य की दवा का ही हमें उपयोग करना पडेगा, भले वह लोगों को कडवी लगे।

पू. श्रीगुरुजी के निधन के पश्चात हुई शोकसभा में आचार्य दादा धर्माधिकारी ने उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था कि श्रीगुरुजी के साथ मेरे बहुत मतभेद थे। किंतु इस महापुरुष के विषय में मेरे मन में बहुत आदर की भावना है। लोकप्रियता की चिंता न करते हुए विशुद्ध राष्ट्रहित का विचार कर जो बात सही लगती थी, वही वे कहते थे।

संयुक्त महाराष्ट्र के आंदोलन के समय भाषावार प्रांत रचना करने वाले नेताओं के कारण बंबई में तनाव (Tension)

निर्माण हुआ था। उस समय भाषावार प्रांत रचना अंततोगत्वा हमारे विघटन का कारण बनेगी यह सभा में कहने का साहस श्रीगुरुजी ने दिखाया था।

जब पंजाबी सूबा आंदोलन के समय पंजाबी हिन्दी विवाद में हमारी भाषा पंजाबी नहीं, हिन्दी है ऐसा पंजाब के लोगों से लिखवाने का प्रयास, वोट प्राप्ति के लिये कुछ नेता कर रहे थे तब अपने पंजाब के प्रवास में श्रीगुरुजी ने कहा था कि पंजाब के लोग 'हमारी मातृभाषा पंजाबी और लिपि गुरुमुखी है ऐसा ही लिखें। "भाषा हिन्दी लिखो" प्रचार करनेवाले एक नेता को किसी संवाददाता द्वारा यह पूछे जाने पर कि आपके गुरुजी तो मातृभाषा पंजाबी लिखने को कह रहे हैं, उस नेता ने स्पष्टीकरण दिया कि एम्. एस्. गोळवलकर हमारे दल के पदाधिकारी नहीं हैं। लोकप्रियता की चिंता न करते हुए केवल राष्ट्रहित की बात हिंमत के साथ प्रकट रूप से श्री गुरुजी बोलते थे। यह गुण हमने इस महापुरुष में पाया इसीलिये इनके विषय में मेरे मन में श्रद्धा है, ऐसा आचार्य दादा धर्माधिकारी ने कहा था।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जब भारत के संविधान की चर्चा चली, उस समय श्रीगुरुजी ने बार-बार कहा कि अपनी संघीय रचना (Federal Structure) नहीं होनी चाहिये। हम सोचें कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कितना लंबा विचार करता है। राजनीति के क्षेत्र में इतना दूर का विचार नेता लोग नहीं करते। वे अपनी प्रतिमा-निर्माण (image-building) के चक्कर में रहते हैं। संघ-राज्य-व्यवस्था (federal structure) राष्ट्रहित विरोधी कहते ही नेताओं ने आलोचना की कि संघवाले सत्ता का केंद्रीकरण, तानाशाही चाहते हैं। लोकप्रियता की चिंता न करते

हुए पं. दीनदयाल उपाध्याय को बताया गया कि एकात्म हिंदु समाज को आधार बनाकर भारत की शासन-व्यवस्था का विचार विकसित (evolve) करो। उन्होंने एकात्म शासन प्रणाली की कल्पना विकसित की। उसका सही अंग्रेजी भाषांतर Integrated form of Govt. (एकात्म शासन प्रणाली) है।

दुनिया के पश्चिमी देशों में, जहां एक ही तरह के एकसंध (एक ही संस्कृति के) लोग रहते हैं, वहां Unitary Constitution है। जहां अलग अलग ढंग के लोग रहते हैं वहां भिन्न राज्य वनाये गये हैं और वहां शासन–व्यवस्था का federal structure है। समाज जीवन में जहां एकात्मता है वहां Unitary form of Govt. और जहां अलग अलग इकाईयां एकत्रित हैं वहां federal form of Govt. है। हिंदुस्थान की विशेषता, जो किसी अन्य देश में नहीं है, यह है कि यहां विविधता में एकता है। कई भाषाओं का अस्तित्व हमारे देश का सौंदर्य है। किंतु सबके भीतर सांस्कृतिक एकात्मता का प्रवाह बह रहा है। संसार के अन्य देशों में जहां एकात्मता है वहां विविधता नहीं है। और जहां विविधता है वहां एकात्मता नहीं है। इसलिये जहां एकात्मता वहां एकात्म (Unitary) और जहां विविधता वहां संघीय ऐसे केवल दो ही शासन–व्यवस्था के सोचनेवाले, विविधता में एकात्म हृदय भारत की शासन-व्यवस्था सोच नहीं सकते थे।

भारत के लिये एकात्म शासन–प्रणाली का विचार पंडित दीनदयालजी ने प्रतिपादित किया। उसमें देश का केंद्र तो एक परंतु सत्ता का विकेंद्रीकरण हो। राज्य नाम की कोई बडी इकाई न रहे परंतु विदर्भ, पूना–बंबई, तेलंगणा, रायल सीमा, सौराष्ट्र,

गुजरात आदि स्थानीय विशिष्टताओं (local characteristics) के कारण उनके जनपद बनें। भारत में इस प्रकार पचपन से साठ जनपद बन सकते हैं। कराधान से लेकर बाकी सारे अधिकार जनपदों को दें। कौनसे विषय जनपद के रहें और कौनसे केंद्र के, इसका विचार हो। इस प्रकार से बने जनपद, केंद्रीय शासन के लिये (rival centre) कभी बन नहीं सकेगा। भाषाओं के विकास के लिये विश्वविद्यालय प्रयत्नशील रहे। यह योजना पं. दीनदयालजी ने एकात्म शासन–प्रणाली के रूप में रखी थी।

आज कई आंदोलन चल रहे हैं। मिझोरम और खलिस्तान आंदोलन स्पष्ट रूप से राष्ट्रद्रोही हैं। तेलंगणा का आंदोलन और विदर्भ की मांग राष्ट्रद्रोही कहना गलत होगा। इन सब आंदोलनों का वैचारिक आधार स्थानीय विशिष्टताओं का (Local Characteristics) ही है। इसी कारण लोगों की भावनाओं को भडकाना संभव हो सका है। स्थानीय विशिष्टताओं को (Local Characteristics) आधार बनाकर जनपदों को अधिक स्वायत्तता न होने से ही ये आंदोलन भडक सके हैं। अन्यथा उनकी भावनाओं को भडकाया नहीं जा सकता था। पं. दीनदयाल जी की एकात्म शासन–प्रणाली और अधिक स्वायत्त जनपद की कल्पना यदि स्वीकार की गयी होती तो उन आंदोलनों की हवा ही निकाल देने (to take the wind out of their sails) जैसी बात होती। आंदोलनों का आधार न रहता और उसका दुरुपयोग विदेशी सत्ताओं के लिये संभव न होता। इससे हमें पता चलता है कि संघ के विचारों का आविष्कार श्रीगुरुजी और पं. दीनदयाल जी ने कितनी दूरदृष्टि से किया था।

हिन्दु राष्ट्र : सनातन सत्य

सबसे अधिक दूरदृष्टि की–हिंदु राष्ट्र की–बात तो १९२५ के विजयादशमी पर्व पर ही कही गयी थी। "हिंदु राष्ट्र" शब्द प्रयोग से कुछ लोगों को भ्रम होता है। पूछते हैं कि अपने हिंदु राष्ट्र की स्थापना कब तक होगी ? हिंदु राष्ट्र की स्थापना होनी चाहिये ऐसा प्रयोग गलती से स्वयंसेवक भी करते हैं। वास्तव में हमें हिंदु राष्ट्र की स्थापना नहीं करनी है। वह सनातन काल से भारत में चलता आया है। वैदिक काल के पूर्व से ही वह विद्यमान है। संघ का आग्रह है कि जो बात सदियों से चलती आ रही है, हम उसे मान्यता दें। अग्नि का धर्म उष्णता और प्रकाश है। हम मान्य करें तो भी है, न करें तो भी है। परन्तु यदि आप स्वीकार करेंगे तो उस अग्नि से अच्छी रसोई बन सकेगी। स्वीकार नहीं करेंगे तो उस अग्नि का उपयोग अपने मकान जलाने के लिये हम कर सकते हैं। लाभ–हानि हमारी है, उस सनातन सत्य की लाभ–हानि नहीं है। वैसे ही हिंदु राष्ट्र यह सनातन सत्य है। मानेंगे तो लाभ और न मानने पर हमारी ही हानि होगी।

विजयादशमी पर्व पर १९२५ में जब हिंदु राष्ट्र की घोषणा की गयी उस समय साहस से यह कहने की अन्य हिंदुत्ववादी नेताओं की तैयारी नहीं थी। परन्तु पू. डॉक्टरजी ने असंदिग्ध शब्दों में कहा कि majority–minority के कारण नहीं, इस देश में यदि एक भी हिंदु जीवित रहेगा, तो भी यह हिंदु राष्ट्र है। यह सनातन सत्य बाकी लोग जानते थे किंतु तात्कालिक लाभ के लिये इस सत्य के साथ समझौता करने की इच्छा राजनैतिक नेताओं को हुई। हिंदु–मुस्लिम एकता होगी तो जल्दी स्वराज्य

मिलेगा, यह अंग्रेजों ने एक चाल चली। नेता चक्कर में आ गये और सोचा कि एकता हो जायेगी तो अंग्रेज भाग जायेंगे और अपने हाथों में स्वराज्य आ जायेगा।

वास्तव में हिंदु–मुस्लिम एकता शब्दप्रयोग ही गलत है। यह संपूर्ण राष्ट्र एक इकाई है। इस में उपासना स्वातंत्र्य है। आप नास्तिक भी हो सकते हैं। "रिलिजन" हर एक का व्यक्तिगत प्रश्न है। It is a relationship between man and his Maker. हर एक का स्तर, प्रवृत्ति और रुचि भिन्न है। इस दृष्टि से प्रत्येक का भगवान के तरफ जाने का मार्ग भिन्न हो सकता है। अंतिम सत्य को matter, अल्ला या Father in the Heaven, चाहे जो कहा जा सकता है। अपना अपना रिलिजन अनुसरण करते हुए भी यह एक राष्ट्र है। जैसे चीन में एक ही परिवार में मां ईसाई, पिता मुसलमान, लडका बौद्ध और लडकी कम्युनिस्ट याने नास्तिक होकर भी उनका एक पारिवारिक जीवन चलता है। वैसे ही भारत में हिंदु, मुसलमान या ईसाई रहने पर भी सब मिलकर यह एक राष्ट्र है क्योंकि हमारे पूर्वज, हमारी संस्कृति एक ही है।

हमारा एक राष्ट्र है यह सब लोगों को अनुभव करना चाहिये। विदेशियों ने यहाँ "फूट डालो और शासन करो" इस दृष्टि से रिलिजन के नाम पर फूट डालने का प्रयास किया। कई लोग उसके शिकार बन गये। रिलिजन को ही यदि स्वतंत्र इकाई मान लिया तो भारत में एक से अधिक इकाइयां, कम से कम कुछ लोग इस राष्ट्र के अंगभूत नहीं हैं, ऐसा मानना पडेगा। और इन सब की एकता करने के प्रयास में अलगाव को बढावा मिलेगा। परन्तु ऐसा शास्त्रीय विचार न करते हुए नेताओं ने

कहा कि अंग्रेज कह रहे हैं, तो चलो एकता वार्ता शुरू होनी चाहिये। इससे एक लेन–देन जैसी सौदेबाजी (bargaining counter) शुरू हुई। इसके सारे दुष्परिणाम हम देख रहे हैं।

एक संस्कृति

सत्य के साथ समझौता बहुत खतरनाक होता है। परिस्थिति की विवशता (Compulsion of situation) मनपर हावी हो जाने से श्रेष्ठ महापुरुष द्वारा गलती हो गयी, तो भी समझौते के दुष्परिणाम से वह बच नहीं सकते। अपना एक राष्ट्र है यह तो समझौतावादी नेताओं ने मान लिया परन्तु राजनैतिक स्वार्थ के लालच में उन्होंने कहा कि यहां मिलीजुली संस्कृति है। दुनिया में सामाजिक, सांस्कृतिक आदान–प्रदान चलते रहने से एक संस्कृति पर दूसरी संस्कृति का असर होकर, उसमें कुछ न कुछ हेरफेर और मूल संस्कृति का विकास होते रहता है। लेकिन प्रत्येक संस्कृति एक ठोस (compact) इकाई होती है। वह संयुक्त (composite) नहीं हो सकती। बालू, नमक और चिनी के सफेद कणों का मिश्रण करने पर उनका बालूपन, खारापन और मीठापन नष्ट नहीं होता। अपनी सत्ता (identity) कायम रखते हुए बाह्यतः सफेद दिखनेवाले कणों का एकत्रीकरण, मिश्रण का उदाहरण है। मिश्र संस्कृति (Composite Culture) मिश्रण जैसा होता है। हायड्रोजन और ऑक्सीजन अपनी स्वतंत्र सत्ता (identity) छोडकर पानीस्वरूप बनते हैं यह ठोस संस्कृति (Compact Culture) का उदाहरण है। अपनी संस्कृति का स्वरूप उसी प्रकार की ठोस (Compact) इकाई का है।

मिली–जुली संस्कृति बनने के लिये एक से अधिक संस्कृतियों की आवश्यकता होती है। लोग कहते हैं कि यहां इस्लामी और

ईसाई संस्कृति भी है। इस्लाम और ईसाई ये धर्ममत अवश्य हैं। परन्तु ये यदि संस्कृतिस्वरूप रहते तो संसार में जैसा प्रत्येक संस्कृति के प्रति श्रद्धा रखनेवाला एक राष्ट्र है वैसा इनका एक एक राष्ट्र होता। पूरा यूरोप इसाई मत का है। इसलिये संपूर्ण यूरोप का एक श्रद्धा केन्द्र बनाने का प्रयास पोप महाशय ने शताब्दियों तक चलाया। राष्ट्र के नामपर अन्य कोई श्रद्धा केन्द्र निर्माण न हो सके ऐसा भी उन्होंने प्रयास किया। परन्तु इस प्रकार पोप का साम्राज्य प्रस्थापित करने में वे असफल रहे। हर देश की राष्ट्रीय संस्कृति अपना आविष्कार करने के लिये यूरोप में उभर कर आयी। फ्रेंच, जर्मन, ब्रिटिश आदि भिन्न संस्कृतियां, फ्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन नाम धारण कर, अपनी संस्कृतियों की विशेषता लेकर विकसित हुईं। राष्ट्र के नाते उनकी इकाई भिन्न है और इसी कारण सब ईसाई मत के होकर भी दोनों जागतिक युद्धों में वे आपस में लडे।

पोप जैसा प्रयास इस्लाम मत में भी हुआ। दुनिया में सारा इस्लाम एक हो इस हेतु खलीफा निर्माण हुए और उन्होंने 'पॅन–इस्लामिज्म" (Pan–Islam) आंदोलन चलाया। किंतु, हम जानते हैं कि प्रथम महायुद्ध के पश्चात् कुराण और महंमद साहब को माननेवाले मुस्तफा गाझी केमाल पाशा ने तुर्कस्थान स्थित अन्तर्राष्ट्रीय खलीफा–पद समाप्त कर डाला। (International Seat of Khilaphat)

हिंदुस्थान में प्रथम मुसलमानों ने और उनको खुश करने हेतु ज्येष्ठ हिंदु नेताओं ने हिंदु–मुस्लिम एकता के लिये खिलाफत आंदोलन चलाया। हिंदुओं का पैसा, त्याग और पसीना बहाया गया। यहां के मुसलमानों के एक प्रतिनिधि मंडल ने केमाल

पाशा से मिलकर उनको खलीफा बनने का अनुरोध किया। परंतु केमाल पाशा ने खिलाफत का पुनरुज्जीवन नहीं होगा ऐसा असंदिग्ध शब्दों में उत्तर दिया।

इस्लामी मत के राष्ट्रों में उनकी अपनी राष्ट्रीय संस्कृति आविष्कृत होने लगी है। पिरामिड और उनके निर्माता राजा फारोआ के विषय में मिस्र में स्वाभिमान की भावना निर्माण हुई। पूर्वजों की ऐतिहासिक स्मृतियां उन लोगों में जागृत होने लगीं। मिस्र में रिलिजन के ठेकेदार मुल्ला–मौलवियों ने जब कहा कि यह कुफ्र कर रहे हो, फारोआ राजा मुसलमान नहीं थे तब वहां के युवकों ने उत्तर दिया कि महंमदसाहब के पहले फारोआ निर्माण हुए थे। वे हमारे श्रेष्ठ पूर्वज हैं। उनको हम कैसे भूल सकते हैं? कुराण और महंमद साहब के बारे में हमारे मन में श्रद्धा है, परंतु हम अपने श्रेष्ठ पूर्वजों को क्यों भूलें? इसी विषय को लेकर मिस्र में राष्ट्रवादी और रूढिवादी (fundamentalists) लोगों के बीच कई वर्ष तक संघर्ष चला। राष्ट्रवादी लोगों का नेतृत्व करनेवाले झगलूल पाशा की वहां जीत हुई है।

अफगाणिस्थान में भी राष्ट्रवाद का उदय हुआ। अपनी आर्य संस्कृति–एक अलग संस्कृति है, अफगाण एक अलग इकाई है ऐसा वहां के लोगों ने सोचा। वैसा विकास करने का प्रयास किया। अमानुल्ला के नेतृत्व में राष्ट्र भावना को लेकर नया श्रद्धा केंद्र निर्माण हो रहा है यह देखकर मुल्ला–मौलवियों का रुढिवाद (fundamentalism) जागृत हुआ। नवजागृत राष्ट्रवाद और मुस्लिम रुढिवाद (fundamentalism) के संघर्ष में अमानुल्ला को हटाया गया।

इरान में रुस्तम, सोहराब, बैराम, जमरोद आदि श्रेष्ठ राष्ट्रपुरुषों का स्मरण जागृत हुआ। पर्शिया के साम्राज्य की याद उभर कर आयी। सडकों को उनके नाम दिये गये। उनकी जीवनियां लिखी जाने लगीं। कुराण, इस्लाम और महंमद साहब के प्रति श्रद्धा रहते हुए वे अपने पूर्वजों को, अपनी गौरवमयी परंपरा को भूल न सके। वहां भी रूढिवादियों का राष्ट्रवादी लोगों से संघर्ष हुआ।

तुर्कस्तान की संस्कृति पर इस्लाम के नाम पर अरबस्थान का आक्रमण हुआ। इस्लाम को मानकर भी हम अरेबिक संस्कृति का आक्रमण क्यों बर्दाश्त करें, ऐसा ही उस समय केमाल पाशा और तुर्कस्थान के लोगों ने कहा। उन्होंने अरेबिक प्रभाव को हटाना प्रारंभ किया। रेगिस्तान और बालू के अंधड (storms) के कारण प्रचलित अरबस्तान की बुर्खा पद्धति हटायी गयी। गोआक और आस्कीन्स जैसे तुर्की भाषाविदों ने तुर्की भाषा से अरबी शब्द हटा दिये। कुराण अरबी भाषा में है इसलिये उसका तुर्की भाषा में अनुवाद किया गया। हमारी संस्कृति की भाषा तुर्की है, इसलिये हम टर्की भाषा में कुराण पढेंगे, ऐसा राष्ट्रवादी लोगों ने कहा। क्या अल्ला इतना अज्ञानी है कि उनको अरबी भाषा में की गयी प्रार्थना समझ में आती है और तुर्की भाषा में की गई प्रार्थना समझ में नहीं आती, ऐसा तर्क प्रस्तुत किया गया। जिस शुक्रवार को तुर्की भाषा में कुराण एक साथ पढने का आदेश हुआ उस दिन तुर्कस्तान के छोटे–बडे शहरों में राष्ट्रवादी और रूढिवादियों (fundamentalists) के बीच दंगे हुए। रक्तपात हुआ। परंतु राष्ट्रीय संस्कृति का आधार बनाकर राष्ट्रवाद का केमाल पाशा ने उद्धार किया।

अपने देश में हिंदु–मुसलमानों में संघर्ष है, ऐसा सोचना गलत बात है। इस अपने राष्ट्र की एक ही संस्कृति है और वह हिंदु संस्कृति है। यहां भिन्न धर्ममतों को अपनी अपनी उपासना का पूरा स्वातंत्र्य है। भारत में राष्ट्रवाद और रिलिजन का झगडा नहीं है अपितु राष्ट्रवाद और अपने हाथों में श्रद्धा का केंद्र चाहनेवाले, राष्ट्रीयत्व का उदय जो चाहते नहीं ऐसे रूढिवादियों (fundamentalists) के बीच यह संघर्ष है। ९५ प्रतिशत मुसलमान रहने पर भी इंडोनेशिया अपनी हिंदु संस्कृति है ऐसा मानते हैं। उनके नाम हिंदु और मुस्लिम नाम मिलाकर होते हैं जैसे महातीर महंमद एक नाम है। उसमें महातीर याने महास्थविर और महंमद दोनों सम्मिलित हैं। सुकर्णो यह हिंदु नाम है। उनकी हवाई जहाज परिवहन को गरुड एअरवेज नाम दिया गया है। वहां रामायण, महाभारत के प्रति श्रद्धा है, रामलीला चलती है। रामायण संमेलन और उसपर अन्वेषण चलता है। यह सब स्पष्ट रूप से हिंदु संस्कृति है। एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद में पाकिस्तान के परराष्ट्र मंत्री के यह पूछे जाने पर कि आप मुसलमान होते हुए राम और कृष्ण का क्यों स्मरण करते हैं, इंडोनेशिया के विदेश मंत्री ने कहा कि, "We have changed our religion, but not our forefathers." इसी कारण भारत में जो संघर्ष है, रिलिजन और राष्ट्र का नहीं किंतु रूढिवाद (fundamentalism) और राष्ट्रवाद का है।

जहां १०० प्रतिशत मुसलमान हैं ऐसे देशों में भी मुल्ला–मौलवियों ने राष्ट्रीय संस्कृति और राष्ट्रीयत्व का विरोध किया। भारत में हिंदु और मुसलमान दो समाजों (Communities) का झगडा है यह गलत ढंग से रखी गयी समस्या है। भारत में हिंदु

और मुसलमान दो समाज हैं यह सोचना गलत है। मुसलमानों के पूर्वज हिंदु ही थे। वे तुर्कस्तान और अरबस्तान से भारत नहीं आये। एक ही खून के खानदान के हम लोग हैं। तात्कालिक लाभ के लिये और अंग्रेज चाहते थे इसलिये एकता का प्रयास हुआ और Bargaining Counter खोला गया। आज भी तात्कालिक राजनैतिक लाभ और अधिक वोट प्राप्त करने हेतु वही प्रक्रिया फिर से चल रही है। जब कोई लिप्सा या कामना निर्माण होती है तो जल्दबाजी के कारण अनिष्ट व्यवहार हो जाता है। थोडी देर हो जाय परंतु सत्य सिद्धांत को लेकर चलेंगे, असत्य के साथ समझौता नहीं करेंगे, यह विचार ओझल हो जाता है। नजदीक का रास्ता खोजने का प्रयास होता है।

भारत विभाजन के समय श्रद्धेय महात्माजी का ऐसा ही हुआ। महात्माजी का विभाजन को विरोध था। किंतु जब बडे कांग्रेसी नेता विभाजित भारत की स्वाधीनता के इतने इच्छुक बन गये कि उनको नियंत्रित करना महात्माजी ने असंभव–सा अनुभव किया, तब महात्माजी ने विवशता महसूस कर उस समय की ए. आय. सी. सी. में अपने भाषण में कहा कि,

" I am opposed to partition but I request you to accept it because your leaders have accepted it and we are not now in a Position to change the leadership immediately."

" यदि मैं बीस साल छोटा होता तो I would have revolted against it. किंतु अब मैं बुढ्ढा हो गया हूं। कोई नया काम नये सिरे से कर सकूंगा यह अब उम्मीद नहीं है।" कुछ समय रुककर मुसलमानों को यहां के राष्ट्रजीवन में आत्मसात किया जा सकेगा इस आत्मविश्वास का अभाव भी महात्माजी ने अनुभव किया।

हमारी संस्कृति में सभी को आत्मसात करने की क्षमता है । शक, हूण जैसे आत्मसात किये गये वैसे मुसलमानों को भी आत्मसात करने की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी । मुगलों के पूर्व तो कवल मारकाट, लडाई, अस्वस्थता, बेचैनी और अशांतता ही रही । मुगलों के समय consolidation प्रारंभ हुआ । मुगल राजाओं के समय, जिनपर शासन चल रहा है उन हिंदुओं के विषय में समझना चाहिये यह विचार निर्माण हुआ । राजवंश के उच्च श्रेणीय और Elite लोगों ने अपने धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, प्रबोध चन्द्रोदय, योगवासिष्ठ, अथर्ववेद आदि ग्रन्थों का अध्ययन और पर्शियन भाषा में भाषांतर करना शुरू किया । विचार करनेवाले मुसलमानों पर श्रेष्ठ हिंदु संस्कृति का प्रभाव होने लगा । औरंगजेब ने अपने बडे भाई दारा शिकोह पर आरोप लगाया कि He is a half Hindu. दारा एक साहित्यिक था । उन्होंने लिखे ग्रंथों का अंग्रेजी भाषांतर उपलब्ध है । एक जगह उन्होंने भगवान के विषय में लिखा कि Thou art in the Kaba as well as in the Somnath temple, in the Convent as in the Tavern. यह भावना कुरान की अपेक्षा शांकराद्वैत के अधिक नजदीक है, यह हम देख सकते हैं ।

कार्ल मार्क्स ने कहा है कि अरबों, तुर्कों, पठानों और मुगलों का क्रमशः हिन्दुकरण हो रहा था । औरंगजेब के समय जानकार मुसलमानों ने उनसे कहा कि इस प्रकार प्रक्रिया चलती रही तो भारत में मुसलमानों का अस्तित्व रहेगा ही नहीं । इसी कारण औरंगजेब को कट्टर मतान्धता की (fanatic) भूमिका लेनी पडी । तो भी आत्मसात्मीकरण की प्रक्रिया अभी तक चलती रही है । अरबस्तान के इस्लामी लोगों की तुलना में

भारत का मुसलमान अधिक हिंदुपन लिये हुये है। पाकिस्तान संकल्पना के जनक महंमद इक्बाल पहले राष्ट्रवादी थे। बै. जीना भी प्रारंभ में राष्ट्रवादी और लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे। खिलाफत आंदोलन के समय जब कांग्रेसी नेताओं ने रूढिवादियों (fundamentalists) के साथ समझौता वार्ता शुरू की तो इससे गलत प्रवृत्तियों को बढावा मिलेगा ऐसा इन राष्ट्रवादी मुसलमानों ने कहा था। परन्तु उनकी बात अस्वीकार कर रूढिवादियों (fundamentalists) के साथ समझौता शुरू हो जाने से ये राष्ट्रवादी भी बाद में रूढिवादी (fundamentalists) बने।

" जबाबे सिक्का " नामक उर्दू कविता महंमद इक्बाल ने लिखी है और उसका अंग्रेजी भाषांतर भी हुआ है। मुसलमानों को उद्बोधन कर वे लिखते हैं, कि " तुम ब्राह्मण बनते जा रहे हो।"

" From the British you have learnt your language,
Your Culture from the Hindus,
How can Muslims pass as a nation ?
Who share even the vews
Into the sky of your nation, you rose like a bright star with a hue but the lure of Indian idols has made even Brahmins out of you."

स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व महात्माजी ने कांग्रेसी नेताओं को कहा था कि, "आप थोडा धीरज रखते तो संपूर्ण भारत की स्वाधीनता हमें प्राप्त हो सकती थी।" राजनैतिक कामवासना के कारण कैसी गडबडी हो सकती है, कैसे भीषण दुष्परिणाम निकल आते हैं, यह हम अनुभव कर रहे हैं।

" हिंदु राष्ट्र " एक चिरंतन सत्य है यह १९२५ में विजयादशमी पर्व पर कहा गया। इसके साथ हम समझौता नहीं

करेंगे। हमारे समाज–जीवन की बीमारी की जड और उसे ठीक करने का सही उपाय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पास है। हम जानते हैं कि बिमारी पुरानी है। लंबी देर तक इसका इलाज चलेगा। "परम् वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्" यह दूर दृष्टि से निश्चित किया हुआ लक्ष्य (long range vision) और उस लक्ष्य तक पहुंचने का रास्ता गहन अध्ययन के पश्चात् तय हुआ है। इसलिये श्रद्धा से इस मार्ग पर वढना हमारा काम है। लक्ष्य-प्राप्ति जल्दी होने के लिये अधिक त्याग, अधिक समय, तथा संपूर्ण शक्ति लगाने की आवश्यकता है।

श्री

संघ—कार्य ईश्वरी कार्य है

अनुशासन याने समझदारी का स्तर बढाना

संघ में अनुशासन है। अनुशासन, discipline का भाषांतर है। discipine शब्द फौजी शिक्षा से नहीं, अपितु (disciple) से याने आध्यात्मिक क्षेत्र से ही आया है। समझदारी का स्तर बढाना यही disciple शब्द का आशय है। व्यक्तिगत, सामाजिक, ऐहिक आदि सभी प्रकार की समझदारी जिससे बढती है, उसे अनुशासन माना गया है। समझदारी का स्तर बढाने के प्रयास में संदेह निर्माण होना अपने यहां स्वाभाविक माना गया है। अनुशासित व्यवहार का आदर्श अर्जुन है। कुरु-क्षेत्र में लडे या न लडे यह संदेह अर्जुन के मन में उत्पन्न हुआ। इसी कारण वह भगवान कृष्ण को पूछता है,

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे ।
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।

लडना या न लडना इसमें क्या श्रेयस्कर है, मुझे निश्चित बताओ इस सुनिश्चित आदेश (definite directive) की मांग अर्जुन की थी। भगवान एक एक विचार कहते गये और अर्जुन प्रत्येक कहे गये विचार का निराकरण कर दूसरा प्रश्न पूछते गये। प्रत्येक प्रश्न के समाधान करने की प्रक्रिया में दूसरी शंका निर्माण होती

रही । ऐसा क्रम अठारह अध्यायों तक चलता गया । इतना सारा स्पष्टीकरण हो जाने के पश्चात् अर्जुन कहता है :

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ।।

सारी शंकाएं, प्रश्न, संदेह नष्ट हो जाने पर भगवान अर्जुन से कहते हैं कि " विमृश्येतदशेषेण," मेरी कही हुई बातों का अशेषेण (In entirety) समग्र, पूर्णरूपेण विचार कर " यथेच्छसि तथा कुरु " जो अच्छा लगता है वह करो । लडे या न लडे यह सीधा भगवान ने नहीं कहा ।

संघ के अनुशासन में याने समझदारी का स्तर बढाने की प्रक्रिया में शंका और उसके समाधान का क्रम चलता रहता है । शंका के कारण ग्लानि अनुभव करने का कारण नहीं है । तीन चार वर्ष पूर्व, प्रतिनिधि–सभा के पश्चात् मैं अपने एक पुराने मित्र स्वयंसेवक को मिलने उनके घर गया था । उनका संघ शाखा से अनियमित संपर्क था । उनके मन में संघ के विषय में कई शंकाएं थीं । उन्होंने कहा कि इतने वर्ष दक्ष–आरम् करते–करते थक गया हूं । मैंने कहा कि यदि आप थकान का सचमुच अनुभव करते हैं तो किसी के बुलाने पर भी आप शाखा में मत जाइये । थकावट और निरुत्साह संसर्गजन्य बीमारी होती है । शाखा में जाने से आप वहां के युवा स्वयंसेवकों को निरुत्साहित करेंगे । मैंने और एक बात कहते हुए उनसे कहा घर में बैठे–बैठे आत्मनिरीक्षण (Introspection) कीजिये । थकान क्यों आयी, कैसे आयी, कबसे आयी इस विषय में सोचने से सही कारण का आप को पता चल जायेगा ।

मानसिक थकावट

थकावट एक मानसिक स्थिति है। मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में एक श्रेष्ठ तत्त्वचिंतक का वाक्य मेरे स्मरण में है। मूल अंग्रेजी वाक्य का आशय है कि आदमी बुद्धि से सोचने के पूर्व अपने मन और हृदय से सोचता है। मन और हृदय का जिस ओर झुकाव है उसी के समर्थन में बुद्धि के द्वारा वह युक्तिसंगत तर्क (Rational argument) पेश करता है। याने हृदय और मन के भी कुछ कारण, कुछ विचार होता है जिसका बुद्धि को पता नहीं चलता। इसका सही पता आत्मनिरीक्षण से चलता है। इसीलिये मैंने अपने मित्र को आत्मनिरीक्षण करने को कहा।

हम स्वयं अपना ही विचार करें। मन एक ऐसी बात है जिससे शक्ति भी आती है और दुर्बलता भी। "मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।" "आत्मैव आत्मनो बंधुः आत्मैव रिपुरात्मनः।" ऐसा कहा गया है। मन एक बहुत बडी शक्ति है जिसका अनेक लोगों को परिचय नहीं है। जो प्रवास करते हैं उनको अनुभव होगा कि किसी स्थानपर रेल से जाने में २२ घंटे लगते हैं यह जानते हुए भी प्रवास में २१ घंटे तक तो आदमी स्वस्थ–चित्त बैठता है। पश्चात् बिस्तर संभालने लगता है और यदि स्टेशन के पास सिग्नल दिया हुआ नहीं है और गाडी कुछ मिनट ही रुकती है तो उसकी बेचैनी बहुत बढती है। थके हुए मन की प्रक्रिया समझने का हम प्रयास करें। किस क्षण से हमें थकावट का अनुभव हुआ इसका जरा आत्मनिरीक्षण करें। हमें पता चलेगा कि जानकर या अनजाने जब हमारे जीवनादर्श (Values of life) बदलने लगे, अपने ध्येय की सुस्पष्ट कल्पना धूमिल होने लगी, बाह्य परिस्थिति और गलत तत्त्वों का

मनपर प्रभाव होने लगा तब से मन की अवस्था डावाँडौल होने लगी है।

संघ का तात्कालिक और अंतिम लक्ष्य (Immediate and Ultimate) पू. डॉक्टरजी ने प्रारंभ से ही स्पष्ट शब्दों में अपने सामने रखा। "याचि देही याचि डोळां" स्वराज्य प्राप्ति, तात्कालिक लक्ष्य और "परं वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्" अंतिम लक्ष्य, हमारे सामने रखे गये हैं। अपनी प्रतिज्ञा और प्रार्थना में, थोडे अलग ढंग से दोनों रखे गये हैं। स्वराज्य प्राप्ति हमारा तात्कालिक लक्ष्य था। अंतिम गंतव्य (last terminus) नहीं था। अंतिम लक्ष्य "परं वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्" प्राप्ति के लिये बडी लंबी अवधि तक काम करना पडेगा, यह भाव हमारे सुप्त मन (Unconscious mind) में था। कितने साल तक दक्ष-आरम् करना पडेगा, हम तो थक जायेंगे यह बात किसी के दिमाग में नहीं थी।

बीच के एक कालखंड में हमारा थोडासा सार्वजनिक-राजनैतिक जीवन से संपर्क आया। राजनीति तो हरेक के सोचने का विषय होता है। पंडित जवाहरलालजी ने कहा था कि मामूली क्लर्क की नौकरी के लिये मॅट्रिक्युलेशन की आवश्यकता होती है लेकिन राजनीति के क्षेत्र में काम करनेवाले (politician) के लिये कोई भी अर्हता (qualification prescribed) आवश्यक नहीं मानी गयी है। इससे देश के वायुमंडल में, "जो कुछ देश में होगा शासन-सत्ता से ही (through power) होगा" ऐसी गलत भावना पैदा हो गयी है। नेताओं ने भी जनता से कहा कि पांच साल में एक बार हमें हुकूमत में लाने के लिये मतपेटी में वोट डालिये। हम सारे राष्ट्र के उद्धार का

जिम्मा उठाते हैं। आप आराम से रहिये, आपको कुछ काम करने की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्र–निर्माण की सारी जिम्मेदारी सरकार की है यह सोचकर लोग भी खुश हो गये।

देश में सब कुछ सरकार के द्वारा ही होगा, दूसरा कोई रास्ता नहीं है इस भावना के बहाव में बुद्धिमान लोग भूल गये कि इस कथन में अंतर्विरोध (Self–contradiction) है। जिम्मेदारी और अधिकार समप्रमाण में होना चाहिये। (Rights and responsibilities should be corresponding) सारी जिम्मेदारी यदि सरकार की है तो सारे अधिकार भी सरकार के होंगे। इससे तानाशाही निर्माण होगी और सरकार तानाशाह है कहने का हमें नैतिक अधिकार भी नहीं रहेगा। व्यक्तिगत स्वातंत्र्य (Civil liberties), मूलभूत अधिकार स्वातंत्र्य (freedom for fundamental rights), और मानवीय अधिकार (human rights) तो हमारे हैं, लेकिन जिम्मेदारी आपकी है ऐसा कहना अन्तर्विरोधी है।

दूसरी एक बात का हमें विस्मरण हुआ। शासकीय सत्ता से (through power, through Govt.) दुनिया के इतिहास में कभी राष्ट्र का निर्माण नहीं हुआ है। इतिहास के अध्ययन से यही सिद्ध होता है कि राष्ट्रनिर्मिति में अनेक प्रकार के कार्य चलते रहते हैं। उसके अनेकानेक साधन हैं जिसमें शासन सत्ता, सरकार भी एक साधन है। संसार में कहीं केवल सरकार के द्वारा राष्ट्रनिर्मिति नहीं हुई है। सब कुछ शासन सत्ता से ही होगा (Everything through Govt.) ऐसा सोचने से राष्ट्र निर्माण के लिये जन–जागरण, जन–आंदोलन का सारा विचार समाप्त होता है। जनता में एक प्रकार का आलस्य, जडता (Inertia)

पैदा होती है। जो आज हुई है। आज हिंदुस्थान में राजनैतिक दृष्टि से बहुत जनजागृति है इसका एक ही मतलब है कि देश के ७० करोड लोगों में प्रत्येक प्रधान मन्त्री बनने का इच्छुक है।

सत्ता के कारण ही सब कुछ होगा ऐसा विचार करनेवाले जरा सोचें कि राष्ट्र का पुनर्निर्माण संघकार्य से होगा ऐसा पू. डॉक्टर जी ने हम से क्यों कहा होगा ? इतिहास के अध्ययन से उनका यह सुनिश्चित निर्णय हुआ था कि सत्ता के भरोसे राष्ट्र–निर्माण नहीं होता है। अपितु राष्ट्र सुदृढ रहा तो उसके भरोसे सत्ता टिकती है, चल सकती है और बढ सकती है। हिंदवी स्वराज्य–स्थापना का उद्योग शिवाजी महाराज ने प्रारंभ किया उस समय स्वराज्य के नामपर एक इंच भी भूमि नहीं थी। उत्तर भारत में मगल साम्राज्य था। दक्षिण में पांच पातशाहियां थीं। सारे हिंदुस्थान में अंधेरा छाया हुआ था। बारा साल तक भारत भ्रमण करने के पश्चात् समर्थ रामदास जैसे श्रेष्ठ सन्त ने लिखा हुआ देश का वर्णन पढने पर लगता है कि उन दिनों में आज की अपेक्षा हजार गुना खराब परिस्थिति थी। किसी की जान, माल और आबरू सुरक्षित नहीं थी। धर्मस्थान भ्रष्ट हो गये, तीर्थस्थान टूट गये, संपूर्ण पृथ्वी आंदोलित हो गयी, ऐसा रामदास स्वामी ने लिखा है। ऐसी कठिन परिस्थिति में केवल किसान लडकों के सहकार्य से शिवाजी महाराज ने स्वातंत्र्य प्राप्ति का प्रयास प्रारंभ किया। और केवल पच्चीस साल के भीतर स्वराज्य–स्थापना हुई। स्वराज्य के वर्णन में समर्थ रामदासजी ने ही लिखा है कि देश के एक कोने में क्यों न हो, 'आनन्दवनभुवन' निर्माण हुआ है। उस पश्चात् सौ साल के पूर्व ही स्वाधीन हिंदुपदपातशाही के घोडे कश्मीर से कन्या-

कुमारी तक दौड करने लगे। उत्तर में अटक नदी के उस पार हमारे विजयी वीरों ने अपना परमपवित्र भगवा ध्वज लहराया, जिसे प्रणाम करने के लिये अफगानिस्तान का अमीर, अहमदशहा अब्दाली का भतीजा उपस्थित था। अपनी विजयी सेना के शिबिर में, पेशवा को लिखा हुआ ईरान के शाह का पत्र उनके राजदूत ने अपने सेनापति को दिया। उस पत्र में ईरान के शाह ने लिखा था कि अहमदशाह अब्दाली बदमाश है। पश्चिम से ईरान के शाह और पूर्व से मरहठ्ठों की सेना अफगानिस्तान पर हमला करे और अब्दाली को खत्म कर अफगानिस्तान का आधा आधा बंटवारा कर डालें। सेनापति रघुनाथराव ने पूना के पेशवा को लिखा कि उनकी राय में ईरान के शाह का प्रस्ताव नामंजूर किया जाय क्योंकि ऐसा बंटवारा करने से हमेशा अपनी रही कुंभा नदी ईरान की सीमा में चली जायेगी।

स्वराज्य स्थापना के सौ साल अंदर ही सर्व दूर हमारे विजयी अश्वों का संचार होने लगा था। और पश्चात् सौ वर्षों में ही यह हमारा साम्राज्य टूटकर हम अंग्रेजों के गुलाम बने। अंग्रेजी सत्ता स्थापित होने से पूर्व हिंदुस्थान का बहुतांश हिस्सा अपने कब्जे में था। दिल्ली के बादशाह हमारे कैदी थे। बडी सेना, अच्छे सेनापति और खजाना आदि सब साधन हमारे पास होकर भी हमारा साम्राज्य टूट गया। साधन विहीन अवस्था में शिवाजी ने स्वराज्य खडा किया और सब साधन उपलब्ध होते हुए भी वह टूट गया। विजयानगर साम्राज्य ऐसे ही निर्माण हुआ और नष्ट हुआ। महाराजा रणजीतसिंह का सिख साम्राज्य भी दस साल के अंदर ही टूट गया। जो मेरी आयु के हैं, वे जानते हैं कि १९४४–४५ तक हम कल्पना भी नहीं कर

सकते थे कि अंग्रेजी साम्राज्य इतने जल्दी समाप्त हो जायेगा। परंतु वह भी टूट गया। खाल्डिया, बाबीलोनिया, असीरिया, पर्शिया, सुकरात का ग्रीस, सब खत्म हो गये। यूनान मिश्र रोम, सब लुट गये जहां से—यह इतिहास है।

इसका अर्थ स्पष्ट है। शासन सत्ता अपने साम्राज्य को बचा नहीं सकती। न ही वह स्वयं की रक्षा–आत्मरक्षा कर सकती है। जो स्वयं को वचा नहीं सकती ऐसी शासन सत्ता राष्ट्र का निर्माण करेगी ऐसा सोचना कितना गलत होगा। और एक प्रकार से सोचो। एक रोमांटिक कल्पना आपके सामने रखता हूं। मानो हमारे हां सारे लोग कॅबिनेट में मंत्री बने और मैं प्रधानमंत्री बन गया। यदि संघ की ताकत कम है तो कुछ पूर्वानुभव से मैं कह सकता हूं कि मैं संघ सिद्धांतों के अनुसार ही चलूंगा इसका कोई भरोसा नहीं है। सत्ता मनुष्य को भ्रष्ट करती है, अनियंत्रित सत्ता अनियंत्रित भ्रष्टाचार निर्माण करती है। (Power corrupts, absolute power corrupts .absolutely.) अपवाद इस नाते कुछ राजर्षि छोड दिये तो दिखायी यही देता है कि जो ऋषि हैं वे राजा होते नहीं और जो राजा हैं वे ऋषि नहीं होते हैं। सत्ता आने पर यदि उसपर अंकुश न रहा तो मनुष्य भ्रष्टाचार शुरू करता है। धरती पर यदि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शक्ति कम है, तो स्वयंसेवक प्रधानमंत्री बनने पर भी वह संघ–नीति बरतता रहेगा इसकी बिल्कुल गारंटी नहीं है।

दूसरी बात भी हम स्मरण रखें। यदि धरती पर हमारी शक्ति है और हमारा कट्टर विरोधक एकाद नक्षलवादी भी प्रधान मंत्री बनता है, तो राष्ट्र–नीति (National policy) तय

करते समय उनको डॉ. हेडगेवार भवन में आकर मजबूरन स्वीकृति लेनी पडेगी। वह जानता है कि संघ बलवान है और बिना इनके सहयोग के काम नहीं चलेगा।

अभी अभी की बात है। तामिळनाडू में हमारे काम के कारण और हिंदु मुण्णनी के प्रयास से हिंदुओं के अनुकूल कुछ वायुमंडल बना है। वहां एक चुनाव क्षेत्र में एक प्रतिष्ठा का (Prestigious) चुनाव था। सत्ताधारी ए. आय. डी. एम्. के. पार्टी के प्रत्याशी श्री नीलप्पन थे। डी. एम्. के. प्रत्याशी उसके खिलाफ खडा था। वहां हिंदु मुण्णनी का प्रभाव रहने के कारण, कट्टर हिंदुविरोधी ऐसी ए. आय. डी. एम्. के. और डी. एम्. के. की प्रतिमा अबतक रहने के बावजूद भी दोनों दलों के नेता अपने आर्. के. गोपालन, जो हिंदु मुण्णनी के संगठक हैं, के पास आये। डी. एम्. के. के नेताओं ने कहा कि हमें हिंदुविरोधी कृपया न कहिये। इससे हमारे वोट कट जाते हैं। ए. आय. डी. एम्. के. वालों ने कहा कि उनकी तो मिनिस्ट्री है। हिंदु मुण्णनी उनका विरोध न करें, जो भी उस समय हिंदु मुण्णनी की मांगें थीं, प्रायः सभी उन्होंने स्वीकार कीं। जिस तामिळनाडू में संघ कार्य अधिक नहीं है, वहां के ये अनुभव हैं।

श्री गुरुजी कहा करते थे कि संघ और स्वयंसेवकों के द्वारा चलायी गयी संस्थाओं की वृद्धि तो अवश्य होनी चाहिये, परंतु वृद्धि में अनुपात का भान रहना (Sense of Proportion) चाहिये। एक के उपर एक पत्थर रखकर, विना सिमेंट के, पिरामिड तीन चार हजार साल पूर्व बनाये गये हैं। वह वास्तु आज भी ज्यों की त्यों खडी है कारण उसकी नींव विस्तृत है। नींव बडी और एक के ऊपर एक क्रमशः छोटी होनेवाली

रचना के कारण ही वे स्थिरता से खडे हैं। यदि नींव छोटी और ऊपर की रचना क्रमशः वडी करने का किसी तथाकथित बुद्धिमान व्यक्ति ने प्रयास किया होता तो वह धराशायी हो जाती। हमारे पिरामिड की नींव राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। अन्य संस्थाओं का काम भी वढे, परंतु संघ–कार्य की नींव बहुत अधिक विस्तृत और मजबूत रहे, उल्टा पिरामिड न हो इसका हमें ध्यान रहें।

परंतु बीच के कालखंड में देश में एक वायुमंडल बन गया कि सत्ता हाथ में आने से सब कुछ हो सकता है, ऐसा सोचा जाने लगा। सत्ता का उपयोग करने का, राजनीति का भी एक अलग तर्कशास्त्र है और उसका हमें राजनीति–शास्त्र के अनुसार ही विचार करना पडेगा। जब तक सत्ता के समर्थक तत्त्व (Attandent factors) अनुकूल नहीं रहते, पर्याप्त सत्ता और अच्छी धारणाएं होकर भी सत्ताधिष्ठित कितना कर सकते हैं, इसकी एक सीमा है। पं. नेहरु ने उद्धृत किया, शायद स्ट्राफर्ड क्रिप्स का वाक्य है। (Politics is a gentle art of getting votes from the poor and collecting funds from the rich by promising to protect each from the other) "गरीबों से कुशलतापूर्वक वोट प्राप्त करने की राजनीति एक कला है। गरीब और अमीर, दोनों का एक दूसरे से संरक्षण करने का आश्वासन देकर अमीरों से धन उपलब्ध कराने का वह कौशल्य है।" जिस भारत में ६०% लोग दरिद्र रेखा के नीचे हैं, ४३ करोड पूर्णरूपेण निरक्षर हैं, १२ करोड अर्धसाक्षर हैं, वहां पाश्चात्य प्रजातंत्र (West Minister model), जो हमारे संविधान में है, यदि थोपा गया तो नतीजा भ्रष्टाचार का ही निकलेगा,

अन्य कुछ नहीं निकल सकता। स्वयं के अनुभव के आधार पर महात्मा गांधी, श्रीगुरुजी, मानवेंद्र रॉय, जयप्रकाशजी और विनोबाजी ने यह बात बतायी है। जहां गरीबी और निरक्षरता इतनी बडी मात्रा में है वहां राजनैतिक दल या हुकूमत में आने के लिये उतावले नेताओं के लिये भ्रष्टाचार के सिवा और कोई नजदीक का रास्ता नहीं है। निरक्षर और गरीब देश में दल का "मैनिफेस्टो" कौन पढता है? दल का कार्यक्रम और नीति पढकर लोग अपना व्यवहार कैसे तय करेंगे? यहां तो सीधी बात है, हुकूमत में आने के लिये जादा वोट चाहिये और अधिक वोटों के लिये निरक्षर गरीब लोगों के वोट खरीदना होगा। वोट पैसे देकर खरीदे जा सकते हैं और खरीदने के लिये पैसा धनवानों से आता है। धनवान भारत का हो या विदेशी, वह धर्मात्मा हरिश्चंद्र तो नहीं होता। अपना धनसंग्रह बढाने में अनुकूल नीति तय करने की शर्त दल–नेता से मान्य करवाकर ही वह चुनाव काम में धन देता है। जिसका कबूतर उसी के साथ गुटुर्गू नहीं कर सकता। जिन्हें हुकूमत में आने की जल्दबाजी करनी है, उनके लिये ये सब अपरिहार्य मजबूरियां हैं।

भ्रष्टाचार नहीं करेंगे, निरक्षरता दूर कर लोगों को सुशिक्षित करेंगे। राष्ट्रभावना का स्तर (level of National Consciousness) ऊंचा उठायेंगे। और इस जनशिक्षा की प्रक्रिया में २५ साल लगे तो भी हमें आपत्ति नहीं है। इस तरह सुशिक्षित राष्ट्रभावना से पूर्ण जनता जब हमें चुनाव में विजयी करेगी तब हुकूमत में आयेंगे। तबतक हम काम करते रहेंगे। इतना धीरज धारण करनेवाली पार्टी और नेता को ही भ्रष्टाचार से मुक्त रहना संभव होगा। अन्यथा भारत में सत्ताप्राप्ति के तर्क-

शास्त्र से भ्रष्टाचार अपरिहार्य है। केवल भारत ही नहीं, सभी (Third World Countries) की यही समस्या है। ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रनिर्माण कार्य सत्ता के द्वारा नहीं हो सकेगा।

स्वायत्त संगठनों की आवश्यकता

राष्ट्र–निर्माण कार्य में लोग राष्ट्र–भावना से ओतप्रोत और हरेक का राष्ट्रीय चेतना का ऊंचा स्तर आवश्यक है। राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सेवाकार्य करने वाले (Autonomous mass organisations) स्वायत्त जनसंगठन चाहिये। इन स्वायत्त संगठनों से चार अपेक्षाएं रहेगीं। एक अपने सदस्यों के व्यक्तिगत हित की रक्षा। अपने सदस्यों की शक्ति का उपयोग राष्ट्रनिर्मिति के कार्य में करना। सरकार यदि अच्छा काम करती है तो सहयोग अन्यथा विरोध यह तिसरी अपेक्षा और सबसे महत्त्वपूर्ण याने सरकार एकमात्र शक्ति-केंद्र देश में रहना खतरनाक रहने से वैकल्पिक शक्तिकेंद्र (alternate power centre) के रूप में कार्य करना। इन चार उद्देश्यों को लेकर, राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत स्वायत्त जनसंगठनों की आवश्यकता है।

"न राज्यं नैव राजाऽऽसीत्" यह पूर्ण धर्मराज्य की आज अवस्था नहीं है। इसलिये आज शासन तो आवश्यक है, परंतु राष्ट्रभावना से परिपूर्ण, स्वायत्त जनसंगठनों के कारण निर्माण हुआ नया नैतिक नेतृत्व (moral leadership) आज आवश्यक है। राजदंड नियंत्रित करनेवाले धर्मदंड की आज आवश्यकता है। सर्वोपरी नैतिक नेतृत्व, निचले स्तर में सर्वसामान्य मनुष्य की राष्ट्रभावना का स्तर ऊंचा उठकर बने स्वायत्त जनसंगठन, और दोनों के बीच में होने से ठीक ढंग से चलनेवाला शासन, आज

आवश्यक है। हाथी के ऊपर अंकुश न रहने से जैसा वह उन्मत्त हो जाता है वैसा ही क्षीण राष्ट्र–भावना रहते हुए जो भी दल सत्ता प्राप्त करेगा वह तानाशाही की ओर ही बढेगा। हिटलर जैसा तानाशाह चुनाव प्रक्रिया (Through ballot–box) में से ही निर्माण हुआ था, इसे हम न भूलें। सत्ता के माध्यम से सब कुछ हो सकता है ऐसा सोचने वाले, मेरे कथन का गहराई से विचार करें।

हम सोचें कि सत्ता तो आती है और जाती रहती है। कई सुलतान आये और कई गये, परंतु अपना सनातन हिंदु राष्ट्र-जीवन सदियों से चला आ रहा है। Govts. may come and Govts. may go, but I go on for ever. यह कहना कि किसी एक दल "यावच्चंद्रदिवाकरौ" सत्ताधिष्ठित रहने से ही हिंदु-राष्ट्र रहेगा, गलत बात है। सत्ता आने–जानेवाली बात है और अपना हिंदु राष्ट्र एक सनातन सत्य है, इसको हम समझें। श्रीगुरुजी ने कई बार कहा है कि सत्ताप्राप्ति के लिये हजारों स्वयंसेवकों को हमारी दक्ष–आरम की प्रदीर्घ तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है। सत्ताप्राप्ति के नजदीक के रास्ते हम जानते हैं, उसके लियें आवश्यक तिकडमबाजी भी हम जानते हैं। परंतु हम उसे करते नहीं, क्योंकि सत्ताप्राप्ति अपना उद्देश्य नहीं है। अपनी तपस्या सत्ताप्राप्ति के लिये नहीं है। मच्छर मारने के लिये भीम की गदा लाने की आवश्यकता नहीं है।

किंतु राजनैतिक वायुमंडल का परिणाम होकर हमने अनवधान से सोचा कि संघकार्य शीघ्र हो इसके लिये भी नजदीक का रास्ता अवश्य ही होगा। Everything has a short cut. आत्मनिरीक्षण करने से आपको अनुभव होगा कि अपने सुप्त मन

में (unconscious mind) इस विचार के प्रवेश करने के पश्चात् हमने थकान, ग्लानि, बहुत साल बीत गये और कितने साल काम करेंगे, इन सबका अनुभव किया। "परं वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्" के लिये भगीरथ प्रयास की आवश्यकता है, यह मूल विचार टूट गया। प्रधान मंत्री अपना हो गया कि काम बन गया, यह विचार उभरकर आने से क्या हम थकान का अनुभव कर रहे हैं, यह हम सोचें।

संघ की शक्ति बढनी चाहिये और उस शक्ति का मूल्यांकन राष्ट्रीयत्व के ढंग से ही करना चाहिये। फिर हमें पता चलेगा, हम कहां खडे हैं। अभी तीन दिन पूर्व भारतीय मजदूर संघ के प्रादेशिक अध्यक्ष श्री मु. ल. वैद्य का सत्कार हुआ था। सत्कार समारोह में उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि, "संघ के रहने के कारण क्या हुआ ऐसा सोचने की अपेक्षा संघ यदि न होता तो देश आज कहां खडा होता" ऐसा सोचने से संघ की महत्ता हम समझ सकते हैं। तीन बातों को लेकर संघ की शक्ति नापी जा सकती है। संघ के स्वयंसेवक और शाखाएं, यह पहली बात है। संख्या बढ रही है, नये–नये क्षेत्र में हम प्रवेश कर रहे हैं, यह मा. सरकार्यवाहजी का ही निवेदन हैं। यह तो शाखाओं और उनमें आनेवाले स्वयंसेवकों की संख्या है। न आनेवाले निष्ठावान स्वयंसेवक भी हैं। हमारे पुराने मित्र ऐसे एक मन्त्री महोदय से मिलने पर उन्होंने संघ की प्रगति के वारे में पूछा। मैंने सरकार्य-वाहजी के निवेदन के अनुसार कहने पर उन्होंने बताया कि, "ये तो नित्य आनेवाले स्वयंसेवकों की संख्या है। परन्तु हमारे मंत्रालय (सेक्रेटेरिएट) में प्रत्येक विभाग में (department) आपके स्वयंसेवक हैं। आपकी जितनी प्रकट शक्ति है, उससे अधिक

आपकी अप्रकट शक्ति है।" इन मन्त्री महोदय के कथन में कितना सत्य है, आप समझ सकते हैं। यह हैं हमारी प्रत्यक्ष संघशक्ति।

संपूर्ण हिंदु समाज संगठित कर लक्ष्य–प्राप्ति की संघ की एक सर्वंकष सर्वसमावेशक (All out scheme) योजना है। अन्तिम लक्ष्य "परं वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्", साधन "विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्", उसके लिये आधार "विजेत्री च नः संहता कार्यशक्तिः"। याने संपूर्ण हिंदु समाज के संगठन के आधार पर धर्म की रक्षा और परिणामस्वरूप परम्वैभव– यह कार्यकारण भाव, साध्यसाधन विवेक हमारे सामने रखा गया है। इसमें संपूर्ण हिंदु समाज को संगठित करने का मूलभूत कार्य (basic) संघ करेगा ऐसा कहा गया। पू. डॉक्टरजी कहा करते थे कि संगठन हमारा प्रारंभ है और संगठन ही हमारा अंतिम काम है। हरेक हिंदु के हृदय में संपूर्ण हिंदु समाज के साथ एकात्मता का भाव जागृत कर समाज को अनुशासनबद्ध ढंग से संगठित करना यही संघकार्य है।

दूसरा सवाल आता है कि संघ यदि केवल संगठन करेगा तो परम्वैभव के लिये सभी क्षेत्रों में नानाविध कार्य और विचार-धाराओं का विकास करने की आवश्यकता कैसी पूर्ण होगी? अपने सरसंघचालकजी ने कहा है कि राष्ट्र–निर्माण में आवश्यक सभी कार्य स्वयंसेवक करेंगे। संघ से संस्कार और प्रेरणा प्राप्त स्वयंसेवक राष्ट्रजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करते हुए वहां राष्ट्रनिर्माण कार्य की रचना करेंगे। अपनी रुचि, प्रवृत्ति के अनुकूल कार्यों की रचना और विचारधाराओं का विकास, इस तरह राष्ट्रनिर्माण के सभी कार्य होने चाहिये। सुसंस्कारित स्वयंसेवकों का निर्माण कर संगठन करने का कार्य संघ करेगा

और ऐसे स्वयंसेवक विभिन्न कार्यों और संबंधित विचारधाराओं की रचना करेंगे, यह श्रमविभाजन पहले से ही सोचा गया था। जब पू. डॉक्टरजी यह कह रहे थे, उस समय कुछ भी दृष्टिक्षेप में न रहने से (nothing was in sight) लोगों को लगा कि वह मात्र स्वप्नरंजन था। आज तो समाजजीवन के विविध क्षेत्र स्वयंसेवकों ने व्याप्त किये हैं। अब लोगों को पता चल रहा है कि जो सर्वंकष (all out scheme) योजना सोची गयी थी उसके अनुसार ही सब चल रहा है।

विभिन्न क्षेत्रों में कार्यशील स्वयंसेवकों ने कुछ परहेज पालन करना चाहिये ऐसा भी कहा गया था। थाना में श्रीगुरुजी ने संघ के बारे में सर्वसमावेशक प्रतिपादन (Magnum Opus) करते हुए तीन परहेजों का उल्लेख किया था। एक, विभिन्न क्षेत्र में जो कार्य खडा करना है वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सिद्धांत और आदर्शों के प्रकाश में ही होना चाहिये। उस क्षेत्र में पहलेसे ही चलती आ रही गंदगी और गलत आदतों का अनुसरण न करें। मजदूर क्षेत्र में जाकर पैसा खाया और शाखा में कार्यवाह के पूछनेपर आप केवल दक्ष आरम जानते हैं, मजदूर क्षेत्र में ऐसाही चलता है, ऐसा न कहते हुए संघने हमें जो पारस्परिक व्यवहार की नीति, रीति और पद्धति सिखायी है उनको मजदूर क्षेत्र में प्रतिष्ठित करना चाहिये। मानो इस क्षेत्र को परिष्कृत करना चाहिये। इस पद्धति से काम करने से यशप्राप्ति में देर हो रही है, ऐसा दिखायी देगा। देर से क्यों न हो, परंतु ठीक ढंग से कार्य कर यश प्राप्ति यह हमारा उद्देश्य है। यह दूसरी परहेज है।

तीसरी परहेज है, अन्य क्षेत्र में काम कर रहे स्वयंसेवकों को प्रतिदिन संघ शाखा में जाना चाहिये। पीतल का लोटा हर

रोज मांजना पडता है। केवल विजयादशमी के दिन गणवेश में उपस्थित रहने से, वर्ष में एक बार लोटा मांज़ने से वह गंदा हो जायेगा। यह तो सर्वसाधारण स्वयंसेवक को भी यदि आवश्यक है, तो जिनको गंदे वायुमंडल में ही काम करना पडता है उनको संघ शाखा में प्रतिदिन जाकर परिष्कृत रहना कितना आवश्यक है, हम समझ सकते हैं।

हम बारीकी से देखेंगे तो जहां इन तीन परहेजों का पालन हुआ वहां अच्छा यश प्राप्त हुआ और जहां पालन नहीं हुआ वहां चिंताजनक परिस्थिति निर्माण हुई है, ऐसा ध्यान में आयेगा।

इस प्रकार विभिन्न जनसंगठनों में काम करनेवाले स्वयंसेवकों का प्रभाव क्षेत्र, उनकी संयुक्त ताकद, यह संघ शक्ति का दूसरा आयाम और हिंदु चेतना का समाज में सर्वसाधारण स्तर का ऊंचा उठाना, यह तीसरा आयाम है। मजदूर क्षेत्र में हमने १९५५ में प्रवेश किया। उस समय केवल कम्युनिस्ट ही मजदूरों के नेता माने जाते थे। आज भारत सरकार ने घोषित किया है कि भारतीय मजदूर संघ नंबर २ पर है और CPI की AITUC तथा CPM की CITUC, दोनों की संयुक्त शक्ति से भारतीय मजदूर संघ की शक्ति अधिक है। तीस साल की कालावधि में यह हो सका है।

मैं कालेज विद्यार्थी था उस समय विद्यार्थी क्षेत्र में "स्टूडेंट्स् फेडरेशन ऑफ इंडिया" छोडकर और कोई संस्था का नाम तक सुनायी नहीं देता था। स्टूडेंट्स कांग्रेस का नाम कभी कभी हम सुनते थे। आज अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद सबसे बडा विद्यार्थियों का संगठन है यह सब को स्वीकार करना पड रहा है। जहां परहेज का पालन हुआ वहां अपेक्षित परिणाम भी प्राप्त हुए हैं।

हिन्दु चेतना का मापदण्ड

संघशक्ति का तीसरा आयाम (स्तर) समझना कुछ कठिन अवश्य है। एक राजनैतिक क्षेत्र को ही सर्वस्व सोचनेवाले (political creature) को मैंने पूछा कि उनका मूल्यांकन किस प्रकार हो। उनका सीधा उत्तर था–वोटों के रूप में। वैसे हिंदु चेतना का स्तर नापा नहीं जा सकता। हिंदु चेतना कोई चुनाव मुद्दा नहीं है। चुनाव में हिंदुओं का परिणाम सही भी होता है और उलटा भी। हिंदु चेतना का सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक ढंग से दलनिरपेक्ष मूल्यांकन होना चाहिये। हिंदुत्वविरोधी डी. एम्. के. और ए. आय. डी. एम्. के. के विधान सभा सदस्यों एवं नेताओं ने हिंदु मुण्णनी के मंच पर से घोषणा की है कि हमारा दल स्वतंत्र होते हुए भी जहां हिंदु हितों का सवाल आता है, हम हिंदु मुण्णनी के सिपाही हैं। मैं तामिलनाडु में प्रचारक के नाते काम करता था। मेरे जीवनकाल में हिंदु हितों के बारे में इस प्रकार कहना असंभव लगता था। तामिलनाडु की जनता और नेताओं ने "हम हिंदु मुण्णनी के सिपाही हैं।" कहना एक क्रांतिकारी घटना है।

कट्टर हिंदु विरोधी कम्युनिस्ट दल के एक श्रेष्ठ नेता हिरेन मुखर्जी मॉस्को में हमारे साथ पार्लमेंटरी डेलिगेशन में थे। मैं बंगला भाषा जानता था। इसलिये उनसे मेरी बातचीत बंगला में ही हुआ करती थी। एक दिन सुबह वहां ओरिएंटल स्टडीज इंस्टिटयूशन में उनका " रिलिजन अँड गॉड " इस विषय पर अच्छा भाषण हुआ। मार्क्सिजम् के आधारपर उन्होंने दोनों की भर्त्सना की। रुसी लोगों ने उनकी बडी तारीफ भी की। दोपहर उनकी एक पुस्तक लौटाने के लिये मैं उनके कमरे में गया और

देखा तो वे धीमी आवाज में आरोह–अवरोह के साथ "चिदानंद रूपम् शिवोऽहं शिवोऽहम्" यह शिवजी का स्तोत्र आंखें मूंदकर गा रहे थे। स्तोत्र पूर्ण कर जब मुझे देखा तो पता चला कि मैंने उनका स्तोत्रगान सुन लिया है। उन्होंने कहा–("Mind well, I have no faith in God") "मुझ पर विश्वास करो, भगवान के प्रति मेरी श्रद्धा नहीं है।" हिंदु विरोधी होकर भी उन पर हिंदु चेतना का प्रभाव हम समझ सकते हैं।

हमारी पार्लमेंटरी कमिटी की एक बैठक जानबुझकर कन्या-कुमारी में रखी गयी थी। उस दिन "महालया" का पर्व था। कहा जाता है कि इस पर्व पर समुद्रस्नान कर देवी का अभिषेक करने से विशेष पुण्य प्राप्त होता है। स्नान कर गीले वस्त्र से हम मंदिर में जा रहे थे। सेक्यूलर दल के श्री रामकृष्ण रेड्डी के आग्रह से ही यह स्नान और दर्शन का कार्यक्रम रखा गया था। DMK के सदस्य हमारे साथ थे। मंदिर में प्रवेश करते समय श्री.रेड्डी के साथ हुई बातचीत बडी उद्‌बोधक थी। उन्होंने कहा कि वे दुविधा (dilemma) में हैं। कैसी दुविधा पूछने पर उन्होंने कहा कि मैं केवल मद्रास का ही नहीं पूरे तामिलनाडु का नेता हूं। यहां के सब लोग मुझे जानते हैं। मेरे कहने पर कि यह तो सरहानीय है, वे बोले यही तो मुश्किल है। ("My party has passed the resolution, that God does not exist.") भगवान का अस्तित्व नहीं है ऐसा प्रस्ताव अभी अभी हमारे दल ने पारित किया है। आपको पता नहीं है। अगले मार्च में मेरी राज्यसभा की कालावधि समाप्त हो रही है। मैं यदि आपके साथ दर्शन करने मंदिर आता हूं तो मुझे जानने वाले, करुणानिधि को लिखेंगे कि अभिषेक करने मैं मंदिर गया था, और मुझे राज्यसभा

की टिकट नहीं मिलेगी । मेरे कहने पर कि यदि यह बात है तो मंदिर के भीतर मत जाओ। वे बोले स्नान कर मैं यहां तक पहुंच गया हूं, अब यदि मेरे नाम से अभिषेक न हुआ तो मुझे महापाप लगेगा । मैंने कहा कि भाई सोचकर जो करना है सो करो परंतु मुझे मत रोको । वे चतुर राजनैतिक नेता थे । उन्होंने दुविधा से मार्ग निकाला । एक कागज पर अपना नाम लिखा और मुझे दस रुपये देकर कहा कि मैं आपके गीले कपडे संभालता हुआ मंदिर के बाहर रुकता हूं । मेरे नाम की चिठ्ठी और दस रुपया दक्षिणा कृपया पुजारी को दें, जिससे वह मेरे नाम पर स्वतंत्र अभिषेक करेगा । ऐसा कह कर उन्होंने साष्टांग नमस्कार कर मुझसे कहा कि ठेंगडीजी मेरा यह नमस्कार भी देवी की सेवा में कृपया पहुंचा देना । जिस दल ने भगवान का अस्तित्व ही नहीं है ऐसा प्रस्ताव पारित किया, उस राजनैतिक दल के नेता का यह व्यवहार है । राजनैतिक दृष्टि से हिंदु चेतना का मूल्यांकन स्तर किस प्रकार है इसके लिये यह एक उदाहरण मैंने आपके सामने पेश किया है ।

सांस्कृतिक दृष्टि से हिंदु चेतना स्तर का मूल्यांकन नापने के लिये एक घटना का स्मरण होता है। विश्व संस्कृत परिषद, विश्व हिंदु परिषद की ही एक शाखा है। उनकी ओर से लोकसभा सदस्यों को संस्कृत सिखाने के लिये वर्ग लगे थे। कृष्णन् भट नाम के एक शिक्षक संस्कृत भाषा सिखाने हेतु वहां आये हुए थे । वर्ग के समारोह में शिक्षार्थियों के अतिरिक्त और संस्कृत प्रेमी लोकसभा सदस्य उपस्थित थे । शुरू में पुण्याहवाचन कौन करेंगे ऐसा कृष्णन्भट के पूछने पर डॉ. करणसिंह तैयार हो गये तो कम्युनिस्ट पार्टी की किसान सभा के अखिल भारतीय

सेक्रेटरी भोगेंद्र झा ने कहा कि, "राजा साहब आप क्षत्रिय हैं। मैं झा, ब्राह्मण हूं। मैं बैठता हूं और पुण्याहवाचन करता हूं। सब को आश्चर्य हुआ कि पुण्याहवाचन के सारे मंत्र और क्रियाएं आरोह-अवरोह के साथ श्री भोगेंद्र झा ने कीं, कृष्णन्-भट को बोलना भी नहीं पडा।

केरल में जब हमारे परमेश्वरन्जी ने कहा कि कम्युनिस्ट, राम और कृष्ण को, अपनी पूर्व परंपरा को नहीं मानते तो नंबूद्रिपाद ने स्वयं उत्तर दिया कि वे असली राम और कृष्ण को तो मानते हैं, परन्तु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वाले उसका जो exploitation करते हैं, उसका हम विरोध करते हैं। हिंदु चेतना स्तर के सांस्कृतिक मूल्यांकन का स्तर नापने का यह एक नमूना है।

तीनों आयामों को मिलाकर हिंदु शक्ति का हम विचार करें। आज सर्वदूर माना जाता है कि हिंदु चेतना जागृत करनेवाला सबसे बडा समूह हमारा है। प्रचारक जीवन स्वीकार कर जब मैं केरल और बंगाल में गया था तो स्थान-स्थान पर कम्युनिस्टों का विरोध था। आज कम्युनिस्टों से डरे हुए लोग राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का आश्रय ढूंढते हैं। यह केरल की स्थिति है। हमारी बढती हुई शक्ति देखकर निराशा की कोई आवश्यकता नहीं दिखती है। परिस्थिति विषयक हमारा मूल्यांकन केवल राजनैतिक न होकर वह राष्ट्रीय है। जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक तीनों इकाइयां सम्मिलित हैं।

हम लोग आगे बढ रहे हैं। हमारी ताकद बढ रही है। लेकिन हमारा ध्येय ही लंबा है और उसे प्राप्त करने में हमें बहुत देर तक काम करना पडेगा। दो तरह से सोचा जा सकता है।

ध्येयवाद, लक्ष्य प्राप्त करना है, उसी के अनुकूल सब कुछ व्यवहार, आचार, विचार करेंगे यह एक मार्ग है। ध्येयवादी पुरुष केवल तात्कालिक लाभालाभ का विचार नहीं करता है। केवल लोकप्रियता (popularity) के पीछे वह नहीं भागता। प्रो. केनेडी ने अपनी 'Profiles in Courage' नामक पुस्तक में लिखा है कि यदि अमेरिका के नेताओं ने सिद्धांत और आदर्शों के साथ समझौता किया होता तो वे सत्ता में आ जाते। सिद्धान्त और आदर्शों को चिपक कर रहनेवाले नेताओं को जनता का विरोध सहना पडा।

दूसरा मार्ग पॉपुलिजम का याने तात्कालिक लाभ का लोकप्रियता के लिये जो उचित लगता है वह करें और अंतिम लक्ष्य केवल सत्ता-प्राप्ति यही रहे। हम लोगों ने पहला मार्ग अपनाया है। स्वयंसेवकों को ध्येयमार्गपर अग्रसर करने हेतु अधिकाधिक सक्षम करने का (to equip) हमारा कार्य है। नेतृत्व के लिये आवश्यक गुणों का विचार करने की आज आवश्यकता है। बाहरी वायुमंडल के कारण सस्ती लोकप्रियता (cheap popularity) की बात हमारे स्वयंसेवकों के मन में आ रही है यह चिंता का विषय है। "वरम् जनहितं ध्येयं केवला न जनस्तुतिः" हमें ध्येय प्राप्ति का विचार करना है, केवल लोकप्रियता की होड में हम नहीं हैं, यह हम ध्यान में रखें।

ध्येयपथ पर जिसको नेतृत्व करना है उसके बारे में नीत्शे ने बडा उद्‌बोधक लिखा है। वे लिखते हैं कि जो पहाडी पर चढते हैं उनको अनुभव होता है कि जैसे-जैसे ऊपर जाते हैं, हवा विरल होती है, श्वासोच्छ्वास् में तकलीफ होती है, और जाडा बढने लगता है। जितना ऊपर जाओगे, उतनी तकलीफ बढती जाती है। जे. कृष्णमूर्ति ने अपनी "The

Search " नामक कविता में, नेतृत्व करनेवाले मनुष्य की मानसिक तैयारी के विषय में प्रबोधन करते समय ,पहाडी की चोटीपर स्थित पेड को संबोधित कर लिखते हैं, अकेले खडे रहो। अकेलापन ही तुम्हारी महत्ता की कीमत है।' (Stand alone, like a solitary tree on the mountain peak for solitarity is the cost of thy greatness.) यह किंमत चुकानी नहीं है, तो रास्ता आसान है। दस लोगों का सहवास चाहते हो तो नीचे आ जाओ। सैंकडों पेड हैं। उनके साथ रहो, लेकिन फिर इस श्रेष्ठता की, कि तुम सबसे ऊपर हो, आशा मत करो। इसी प्रकार का नेतृत्व संगठित हिंदु समाज के लिये हमें अभिप्रेत है।

आज अमेरिका के राजनैतिक नेतृत्व में प्रचार और प्रतिमा प्रक्षेपण (Image building) से सब हो जाता है। ५० प्रतिशत से अधिक अमेरिकी अध्यक्षों की प्रतिमा चुनाव के पूर्व बढाचढाकर प्रक्षेपण की जाती है और कालावधि समाप्त होने के पूर्व ही उनकी प्रतिमा धूमिल होकर समाप्त हुई दिखायी देती है। प्रचार माध्यम और मात्र प्रतिमा प्रक्षेपण कर समाज की ताकद बढाना, समाज सुसंगठित करना संभव नहीं है। नेतृत्व करनेवालों को कैसा व्यवहार करना चाहिये इस विषय में, भगवान विष्णु के नामों का उल्लेख कर " विष्णुसहस्र नाम " स्तोत्र में कहा गया है, " अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।" 'अमानी' याने स्वयं अपने तरफ मान सम्मान न लेनेवाले, जो दूसरों को सम्मानित करते हैं वे 'मानदो, स्वयं का सम्मान न चाहकर दूसरों को सम्मानित करने के कारण 'मान्यो' और इस व्यवहार से जो 'लोकस्वामी' जनता के द्वारा ही माने जाते हैं वे जननेता याने 'लोकस्वामी' ऐसा अपनी

परंपरा में नेता के बारे में कहा गया है। दूसरों को पीछे खदेडकर स्वयं आगे बढने का प्रयास करनेवालों को अपने यहां नेता नहीं कहा गया।

"अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी"–इस प्रकार का नेतृत्व ही जनशक्ति, जनसंगठन निर्माण कर सकता है। हमें ऐसे नेतृत्व के लिये आवश्यक सद्गुण संपादन करने की आवश्यकता है। प्रथम पाबंदी या आपात्स्थिति जैसे कसौटी के, राष्ट्र में जब आपात्घडी आती है उस समय इन गुणों की परीक्षा होती है। युद्धशास्त्र में शत्रु गोलाबारी, हमले कर रहे हैं ऐसे समय पर उत्तेजित (provoke) न होकर अपनी युद्ध–नीति तय करना नेतृत्व की कसौटी मानी गयी है। शत्रु के लिये प्रतिकूल और अपने लिये पूर्णतः अनुकूल रणक्षेत्र में शत्रुसेना से संघर्ष कर उसे पराजित करने में सफल रहनेवालों को यशस्वी नेता कहा गया है। छत्रपति शिवाजी और अफझलखान दोनों युद्धनीति में कुशल सेनापति थे। छत्रपति शिवाजी जबतक पहाडी में हैं तब तक उनको परास्त करना कठिन है, अफझलखान जानता था। इसलिये उनको मैदान में उतारने के लिये उत्तेजित करने का पूर्ण प्रयास किया गया। अफझलखान ने कहा कि शिवाजी घबडा गया है, जनता को सताना शुरू किया, महिलाओं पर अत्याचार किये, मंदिरों में देवमूर्तियां भंग कीं, शिवाजी की कुलदेवता–भवानी मूर्ति भी खंडित की। अपनी कुलदेवता के मंदिर पर आक्रमण होकर भी शिवाजी जान बचाने छिपकर बैठा है, यह कायर हिंदुओं को कैसे बचाएगा, इस प्रकार का घृणास्पद अपप्रचार किया। परंतु शिवाजी उत्तेजित नहीं हुए। मिलने के लिये जो स्थान शिवाजी को सबसे अधिक अनुकूल था वहां अफझलखान को बाध्य होकर आना पडा। आगे का इतिहास हम जानते हैं।

उत्तेजना के प्रयास होते हुए भी संतुलन न खोने का नेतृत्व गुण हमारे अन्दर आना चाहिये। सर्वसामान्य आदमी अपनी दुकान, मकान और बैंक बॅलन्स की चिंता करता है। वह यदि चाय पीते पीते वृत्तपत्र पढते समय स्वयंसेवकों से पूछते हैं कि तुम्हारे संघवाले क्या कर रहे हैं, हमें उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं है। हमें वहुत लंवा विचार करना चाहिये। कहां पहुंचना है, वहां पहुंचने के लिये इस समय क्या करना आवश्यक है, यह ठंडे दिमाग से सोचकर हम अपने संगठन की शक्ति बढायें। हर तरह की परिस्थिति पर हम मात कर सकते हैं, इसमें शक करने की आवश्यकता नहीं है। अपना यह ईश्वरीय कार्य यशस्वी होकर रहेगा। यह जगन्नाथ का रथ है, आगे बढनेवाला ही है। If not due to us, in spite of us. सफलता का यह रास्ता तय करते समय बीच में उथल-पुथल (ups and downs) आ सकते हैं। परंतु यह सफल होकर ही रहेगा।

आगे वढनेवाले इस जगन्नाथ रथ को खींचने में हम भी सहभागी बने, तो हमें पुण्य प्राप्त होगा। सफलता प्राप्ति में लगनेवाला कालावधि कुछ कम होगा। लेकिन हम काम नहीं करेंगे तो संघ डूब जायेगा इस प्रकार आप बिल्कुल चिन्ता न करें। यह यशस्वी ही होनेवाला ईश्वरीय कार्य है। इसके लिये हम उपयुक्त साधन, उपयुक्त माध्यम कैसे वन सकते हैं, इसकी चिन्ता हमें अवश्य करनी चाहिये। अच्छे, सज्जन, प्रामाणिक और ध्येयनिष्ठ मनुष्य के मन की भी कभी डांवाडौल अवस्था हो सकती है। इससे ग्लानि अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है। इतिहास में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। इंग्लैण्ड पादाक्रांत करने के लिये "विल्यम द कॉन्करर" नेदरलँड से गया

था । उस समय इंग्लैण्ड में नरमांस–भक्षक खूंखार लोग रहते थे । परंतु अपने लोगों को साहस बंधाकर, उनको साथ लेकर विल्यम जहाज से इंग्लैण्ड गया । इंग्लैण्ड में जहाज से प्रथम उतरनेवाले विल्यम थे । वहां कीचड से पैर फिसल जाने के कारण अपना दाहिना हाथ जमीन पर रखकर उन्होंने स्वयं को संभाल लिया । प्रथम पदार्पण पर पैर फिसलने को अपशकुन समझने की कानाफूसी सुनकर विल्यम ने कहा कि पहला कदम रखते ही इंग्लैण्ड की भूमिपर मेरे हाथ की मुहर लग गयी है । इस कारण हमारी विजय निश्चित है । फिर सबको आदेश दिया कि इधर उधर न देखते हुए सामने की पहाडी पर चढो । पहाडी चढकर सब ने देखा कि जिन जहाजों से वे इंग्लैण्ड आये थे और जिनके सहारे लौटने का सोच रहे थे वे सब जहाज जल रहे हैं । विल्यम के आदेश से ही वे जलाये गये थे । विल्यम ने कहा, जो डरसे भागना चाहते हैं उन्हें समुद्र में डूबकर मरना पडेगा । अन्यथा लढकर विजय प्राप्त करनी है । और कोई रास्ता नहीं है । लौटने का रास्ता बन्द हुआ देखकर जिनका मन डांवाडौल था उनमें भी पराक्रम की पराकाष्ठा कर इंग्लैण्ड जीतेंगे ऐसा निश्चय दृढ हुआ । जानेवाले सब लोग बहादूर थे । परिस्थिति से निर्मित डांवाडौल स्थिति और हिचक नष्ट होते ही विजय प्राप्त करने का उनका निश्चय हुआ और उन्होंने इंग्लैण्ड जीत लिया ।

अपने इतिहास में भी सिंहगढ जीतते समय तानाजी मालुसरे मारे गये थे । बहादूर लोग भी डर गये । जान बचाने के लिये जिन रस्सों के सहारे दुर्ग पर आये थे, उसी का उपयोग कर भागने का सोच रहे थे । सूर्याजी मालुसरे ने उन रस्सों को काटकर कहा कि जो वापस लौटना चाहते हैं, कूदकर मरो,

क्योंकि रस्से काट डाले गये हैं। वरना दुश्मन को मारकर किला फतेह करो। रस्से काट डाले गये हैं, सुनकर उनकी डांवाडौल अवस्था समाप्त हो गयी और मराठे विजयी हुए।

संघकार्य करते समय कभी ऐसी डांवाडौल अवस्था हुई तो स्वयं का निश्चय दृढ बनाने के लिये, अपने ही हाथों से अपनी रस्सियां काटने की प्रक्रिया पू. डॉक्टरजी ने संघ में प्रारंभ की। यह प्रक्रिया है अपनी प्रतिज्ञा। हम हिंदु पद्धति से जन–नेतृत्व करना चाहते हैं। "परं वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्" के पथपर मार्गक्रमण में हम हिंदु समाज को तैयार कर ले जाना चाहते हैं। संगठन की ताकद बढाकर जननेतृत्व करना चाहते है। नेतृत्व करने की यह क्षमता प्रतिज्ञा के कारण हमारे अन्दर आ जाती है। इसलिये प्रतिज्ञित स्वयंसेवकों के मन में चिंता, निराशा का कोई स्थान नहीं है। एक अंग्रेजी कहावत का आशय है कि अपयश नाम की कोई चीज नहीं है, अपूर्ण विजय नाम की चीज हो सकती है। There is nothing like a failure in this world. There is only partial success. जो निश्चय से चलते रहते है, वे मंजिल तक पहुंच जाते हैं। यह अपने ईश्वरीय कार्य की प्रेरणा ठीक ढंग से समझकर हमें आत्मपरीक्षण करने की आवश्यकता है।

॥ श्रीः ॥

स्वयंपूर्ण—कार्यपद्धति

जो अबतक स्वयंसेवक नहीं बने हैं ऐसे लोगों से संपर्क प्रस्थापित करना कार्यवृद्धि के लिये बहुत आवश्यक है। परंतु उनमें और स्वयंसेवकों में एक अंतर है। "परम् वैभवं नेतुमेतत्स्व-राष्ट्रम्" यह स्पष्ट लक्ष्य हमारे सामने है। हमारे जीवन में संदर्भ निकष (Term of reference) के नाते यह लक्ष्य है। कोई भी कदम उठाते समय वह वांछित दिशा की ओर ले जायेगा या नहीं, इसका ध्यान हम रखते हैं। अन्य लोगों के सामने ऐसा श्रेष्ठ लक्ष्य नहीं है। अपना मकान, दुकान और बैंक बैलेन्स, यही विचार उनके सामने रहता है। इस कारण हमारा सर्वसमावेशक दृष्टिकोण, संघ से असंपर्कित सामान्य मनुष्य का नहीं हो सकता। उनके कुछ भी कहने पर अधिक संवेदनशील (touchy) न होते हुए, वे समझ सकेंगे इस प्रकार, आत्मीय संबंध बढाकर उनको समझाना हमारा काम है।

यदि हिंदु राष्ट्र मनुष्यरूप धारण कर मानो हमसे बोल रहा हो तो उसकी चिंता हमें अवश्य करनी पडेगी। अपनी भूतकाल की सब घटनाओं का अन्वयार्थ बराबर लगाकर, वर्तमान की बारिकी को समझकर, दूर के भविष्य को देखनेवाला हिंदुराष्ट्र-पुरुष, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों से अपनी अपेक्षाएं यदि कथन करता है, तो उन अपेक्षाओं को हमें पूरा करना चाहिये। इसके बारे में हमें सोचना होगा।

कभी कभी संघ पर आक्षेप करते हुए किसी के कुछ कहने पर स्वयंसेवक सज्जनता के कारण अपने को आरोपी के कटघरे में (dock) मानकर आक्रमक आरोपों का उत्तर देने का प्रयास करते हैं। मजदूर क्षेत्र में काम प्रारंभ करने के पश्चात् भोपाल में एक कार्यकर्ता वहां नियुक्त किये गये थे। एक गेट मीटिंग में उनका भाषण सुनने मैं गया था। भाषण के पश्चात् विषय प्रतिपादन के बारे में उस कार्यकर्ता द्वारा पूछे जाने पर मैंने कहा, "भाषण तो बढ़िया था, लेकिन आपका पूरा भाषण केवल आक्षेपों का निराकरण करनेवाला (डिफेन्सिव) क्यों था ?" उन दिनों में कम्युनिस्ट हमें पूंजीपतियों के पिट्ठू आदि गाली देते थे। उनका खंडन करने का ही उस कार्यकर्ता ने अपने भाषण में प्रयास किया था। मैंने उनसे कहा कि "गाली देना कम्युनिस्टों का धंधा है। आपने एक आरोप का खंडन किया तो वे दूसरा आक्षेप उठायेगें। हम अपना विचार, अपनी बातें लोगों के सम्मुख रखेंगे या केवल खंडन ही करते रहेंगे ?" उनके द्वारा यह पूछने पर कि " क्या गालियों का यथोचित उत्तर नहीं देना चाहिये ?" मैंने कहा, " आक्रमक ढंग से बात करो। आप पूंजीपतियों के पिट्ठू हैं।" इसका जबाब है कि " बेटा। तुम रूस के कुत्ते हो। वहां बारीश होती है तो तुम यहां छाता खोलते हो। पतिव्रता धर्म जैसे तुम रूस के साथ व्यवहार करते हो।" मेरी सूचना का सही अर्थ समझकर उसने आक्रमक ढंग से बोलना प्रारंभ करते ही भोपाल के कम्युनिस्ट नेताने आकर मुझसे कहा, "ठेंगडीजी, आपकी और हमारी विचारधारा भिन्न है। लेकिन एक दूसरे को गाली देना हमें शोभा नहीं देता। बातचीत और भाषणों में कुछ यथोचित व्यवहार (code of conduct) हम तय करेंगे और गाली

गलौच नहीं करेंगे।" उसके पश्चात् भोपाल क्षेत्र में गाली गलौच की बात खत्म हो गयी।

नेतृत्व का निर्माण

पू. डॉक्टरजी ने ग्रामीण क्षेत्र में १ प्रतिशत और नागरी क्षेत्र में ३ प्रतिशत स्वयंसेवकों की संख्या करने का लक्ष्य अपने सामने रखा था। इस कथन का अर्थ स्पष्ट करने हेतु श्रीगुरुजी ने कहा कि ग्रामीण क्षेत्र में ९९ लोगों का प्रेम और विश्वास संपादन करनेवाला एक स्वयंसेवक चाहिये और शहरी क्षेत्र में ९७ लोगों के विश्वासपात्र और नेतृत्व करनेवाले तीन स्वयंसेवक चाहिये। मतलब है कि हमें नेता निर्माण करना है। आजके सार्वजनिक जीवन में "नेतागिरी" करने वाले जैसे नहीं तो "अलौकिका नोहावे लोकाप्रति" सर्वसामान्य मनुष्य जैसा व्यवहार करनेवाले ऐसे नेताओं के निर्माण का कार्य हमें करना है। समाज जीवन में सबके साथ घुलमिलकर रहनेवाले, किंतु लोगों को प्रेरणा (initiative) देते हुए सामने बढानेवाले, यही नेतृत्व की अपनी कल्पना है। समाज का सामूहिक नेतृत्व करनेवाले हम स्वयंसेवक हैं। हमें सोचना पडेगा कि आज हिंदुस्थान के समाज–जीवन में सस्ती लोकप्रियता की जो बात चल रही है, क्या उसी को प्रमाण मानकर हमें चलना है ? आज देश में अनुयायियों के द्वारा नेता घसीटे जा रहे हैं। एक व्यंगचित्र का मुझे स्मरण होता है। उसमें घर के भीतर खिडकी में खडे नेता बाहर खडे लोकसमूह को देख कर कह रहे थे, "वहां मुझे जाना चाहिये। वहां लोक-समूह खडा है, और मैं उनका नेता हूं।" ऐसा हमें नहीं करना है। " वरं जनहितं ध्येयं, केवला न जनस्तुतिः" इस मार्ग पर हमें चलना है। रोगी को तन्दुरुस्त करने यदि कडवी दवा पिलाना

आवश्यक है, तो उसे पीने को तैयार न रहनेवाले को जबरदस्ती कडवी दवा पिलानेवाले डॉक्टर जैसा हमें व्यवहार करना होगा। कडवी दवा पिलाने से मेरा एक वोटर नाराज होता है, इसलिये उसकी स्वास्थ्य–प्राप्ति में कडवी दवा, इंजेक्शन या आवश्यक ऑपरेशन का न सोचकर मीठा पानी या चाय पिलानेवाले डॉक्टर जैसा हम न सोचें। हमें नेतृत्व करना है, केवल लोकानुरंजन हमारा काम नहीं है, यद्यपि लोकानुरंजन के माध्यम से लोगों को हमें संघस्थानपर लाना है। हम यह न भूलें कि लोकानुरंजन हमारा माध्यम है, ध्येय नहीं है।

" जनता की अपेक्षा " के बारे में हमें सोचना चाहिये। हमें समझ लेना चाहिये कि नेता और अनुयायी के सोचने में कुछ अंतर रहेगा। एक पहाडी को चोटी पर और दूसरा पहाडी के नीचे, दो व्यक्ति की दृक्–शक्ति (eye sight) समान होकर भी चोटी पर खडे मनुष्य को अधिक विस्तृत क्षेत्र दिखायी देता है। इसी कारण वह नेतृत्व कर सकता है। नीचे खडा मनुष्य जैसा जो देखता है, उतना ही चोटीपर खडे मनुष्य को यदि दिखायी दे, तो वह नेतृत्व क्या करेगा ? इस दृष्टि से अपनी भूमिका स्पष्ट जानकर, जनता के साथ यदि हमारी बातचीत होती है, तो किसी के कुछ करनेपर हमें क्षुब्ध (disturb) होने की आवश्यकता नहीं है। अपनी स्वतंत्र बुद्धि से, हमारा ध्येय और उसकी प्राप्ति के मार्ग के बारे में निरपेक्ष विचार हमें करना चाहिये। परिस्थिति के दबाव का अकारणही हम पर परिणाम न हो। वोट प्राप्त करना हमारा ध्येय नहीं है, अपने राष्ट्र को परम वैभव तक ले जाना, हमारा ध्येय है। दोनों में कहीं भी विचारों का संभ्रम पैदा न होने दें।

पंजाब समस्या

पंजाब की समस्या पर कई लोगों ने चिंता प्रकट की है। उसके सभी पहलुओं का विवरण आवश्यक है। अपने पू. सरसंघचालक श्री बाळासाहेब ने अनेक वार कहा है कि "हम सिखों को हिंदु समाज के ही अंग मानते हैं।" सिख समाज को शत्रुवत् मानकर उनके खिलाफ कार्यवाही करे, ऐसा कहने का मतलब संपूर्ण सिख समाज को हिंदुत्व की छत्रछाया (fold) से निकाल कर पाकिस्तान की गोद में बिठा देना ही होगा। यह नीति आत्मघातक होगी। सिख समाज को हम दुश्मन समझें, जिससे वह अमेरिका की गोद में जाकर बैठे, हिंदुत्व विरोधी गुट में सम्मिलित हो, इस हेतु हमें उत्तेजित और क्षुब्ध करने का अमेरिका और पाकिस्तान पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं। उनके इस प्रयास में, हम उनके उपकरण बन, उनका खेल न खेलें।

हम आक्रमक नहीं हैं। किंतु आत्मरक्षा सभी का अधिकार रहने के कारण उस दृष्टि से आवश्यक तैयारी हमें करनी चाहिये। यह बात कानून और नैतिकता के अंतर्गत आती है। ग्रामीण क्षेत्र से लेकर सर्वदूर पंजाब में सौहार्द, शांति और एकात्मता निर्माण करने की दृष्टि से मा. रज्जुभैया और मा. भाऊरावजी देवरस द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं। दि. २३ नवंबर को अमृतसर में बहुत बडे कार्यक्रम का आयोजन हुआ था। डेढ लाख से अधिक लोग, जिसमें ३० प्रतिशत अपने केशधारी सिख बंधु उपस्थित थे। बहुत सफल और प्रभावी ऐसा यह कार्यक्रम हुआ।

फिर भी वहां की बढती हुई गडबडी के कारण आम जनता में कुछ भावनाएं पैदा हो जाती हैं। उग्रवादी बहुत नया, अद्भुत,

अभूतपूर्व तंत्र (technique) अपना रहे हैं, जिसका मुकाबला कानून और व्यवस्था विभाग संभवत: नहीं कर सकेगा, ऐसा विचार कुछ क्षेत्र में मैंने सुना है। आज पंजाब में उपयोग में लाया जा रहा उग्रवादी तंत्र नया नहीं है। ढाई तीन वर्ष पूर्व लैटिन और मध्य अमेरिका में इस तंत्र का प्रारंभ हुआ। चेक व्हॅवेरा और मॅरी घेला, ये दो व्यक्ति इस तंत्र के प्रणेता हैं। घातपात, हिंसा, उग्रवाद और गुरिला युद्धनीति का तंत्र, ग्रामीण क्षेत्र के लिये चेक व्हॅवेराने और शहरी क्षेत्र के लिये मॅरी घेला ने विकसित किया। देश विदेश में सुसंस्कृत (civilized) गृह-मंत्रालय के खुफिया लोग इस तन्त्र को जानते हैं। इस तन्त्र से प्रशिक्षित करने के लिये अमेरिका में एक शिक्षालय है और वहां दुनिया के उग्रवादियों को प्रशिक्षित किया जाता है। सब दुनिया इसे जानती है। केवल अपने देश में ही नहीं तो आफ्रिका में भी उग्रवादियों को प्रशिक्षित कर भेजा जाता है। और इस प्रकार के उग्रवादी तन्त्र का मुकाबला करना सभी सुसंस्कृत शासनों (Civilized Govts.) को अवगत है। हमारे गृहमंत्रालय के संबंधित लोग इसका सफल मुकाबला करना जानते हैं। हमारे मन में इस विषय में भ्रम न हो।

उग्रवाद की चुनौती में संघवाले क्या कर रहे हैं, ऐसा भी एक आक्षेप रहता है। उग्रवाद की चुनौती के मतलब का अपने मन में संभ्रम न हो। दंगों की चुनौती होती है। मार्क्सिस्टों द्वारा केरल में यह चुनौती दी गयी। वहां दंगे मारपीट, खून खराबा होता रहा। वहां मार्क्सिस्ट हमारे लिये चुनौती है। उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और विदर्भ में कई जगह दंगे हुए। दंगों में दोनों पक्षों को लोग खुलेआम जानते हैं। हिंदु मुसलमान का दंगा है तो

मुसलमान दंगा करनेवाले विपक्षी हैं, यह हिंदु जानते हैं। केरल में संघर्ष मार्क्सिस्टों से होते समय दोनों और हिंदु होने पर भी उस क्षेत्र के लोग संघवाले कौन और मार्क्सिस्ट कौन, जानते हैं। परंतु उग्रवाद में पहचाने गये (identified) उग्रवादी कोई नहीं है। एक जगह दस लोगों की उग्रवादियों ने हत्या की, इसलिये दूसरे स्थान पर भी दस लोगों की हत्या करो, इस कथन का मतलब होगा कि कोई सिख उग्रवादी हुआ तो सारा सिख समाज हमारा दुश्मन है, ऐसा हम समझें। यह विचार हिंदुत्व की भूमिका से पूर्णतः विसंगत है।

पचास सिख स्कूटरों पर बैठकर आम बाजार में से जा रहे हैं। इन में यदि एक स्कूटर पर दो उग्रवादी सम्मिलित हैं, तो उन्हें हम कैसे पहचाने ? जबतक दो उग्रवादी गोली नहीं चलाते, तबतक कौन उग्रवादी, इसका पता नहीं चलेगा। ऐसी अवस्था में संघर्ष करने के अपने सामने दो विकल्प रहते हैं। एक तो सभी पचास सिखों को गोली से उडा देना। याने संपूर्ण सिख समाज को अपना दुश्मन घोषित कर उनको पाकिस्तान की गोद में धकेल देना। यह तो सरासर गलत होगा।

उग्रवाद का किस ढंग से मुकाबला कर सकते हैं, यह हम सोचें। सिख समाज को हिंदु एकात्मता से अलग न करते हुए भी एक विचार हम ध्यान में रखें कि सिख समाज की एक मनोवृत्ति है। यदि सब सिख, गैरकेशधारियों के खिलाफ होते तो जगह जगह केशधारी–गैरकेशधारियों के दंगे होते। अभी तक इस प्रकार का एक भी दंगा नहीं हुआ है। इसका एक ही कारण है कि समाज के नाते सिख अन्य हिंदुओं के खिलाफ नहीं हैं। उग्रवाद का समर्थन करनेवाले सभी लोग उग्रवादी हैं, ऐसी भी

बात नहीं है । लेकिन इतने दिन हुए हैं, राज्य और केन्द्र सरकार कुछ कर नहीं पा रही, अपना संरक्षण करनेवाला कोई नहीं है, ऐसा समझने के कारण लोगों में निराशा आ रही है। केशधारियों या गैरकेशधारियों में से किसी को उग्रवादी यदि पचास हजार रुपया मांगते हैं, तो इन्कार करने की किसी की भी हिंमत नहीं है । क्योंकि यह उग्रवादी गोली मार सकता है, वह जानता है । परन्तु सर्व सामान्य सिख समाज अपने खिलाफ है, समझना गलत है ।

उग्रवाद से मुकाबला

" क्यों भाई, पंजाब में यदि शाखाएं अच्छी चल रही हैं तो फिर उग्रवाद के खिलाफ स्वयंसेवक क्या कर रहे हैं ? क्या आपमें कुछ ताकत नहीं है ?" ऐसा सवाल पूछा जाता है । बहुत जिम्मेदारी के साथ यह कहा जा सकता है कि पंजाब में संघ की ताकत है । परंतु सरकार की शासन व्यवस्था रहते हुए संघ जैसे समाज संगठन ने वहां की कानून व्यवस्था में हस्तक्षेप करना उचित न होगा । कहीं दंगा हो जानेपर तृतीय पक्ष (Third Party) के नाते जब सरकार पदार्पण करती है, तो उनका क्या रवैया रहता है, हमने देखा है । दंगा भडकानेवाले गुंडों की ओर गोली चलाने की अपेक्षा, शांतता प्रस्थापित करने-वाले लोगों की तरफ गोली चलायी जाती है । केवल गुंडों को गिरफ्तार करने से सरकार पक्षपाती सिद्ध होगी, इसलिये दस हिंदुओं को भी कारावास में बन्द करनेवाली सरकारी नीति रही है । यह नीति अपनानेवाली सरकार रहते हुए, शांतता प्रस्थापन में हमारे द्वारा कोई अच्छा काम करने पर शासन की ओर से कौनसा कदम उठाया जायेगा, इसका अंदाजा हम कर सकते हैं ।

परिस्थिति को नियंत्रण में लाने की हमारी ताकत होते हुए भी आज की वहां की परिस्थिति में कदम उठाना असंभव–सा है, यह हम समझें।

सेना और पुलिस में जो सिख बंधु हैं, विद्रोह न करे यह तो सावधानी सबको बरतनी पडेगी। यह कोई अभूतपूर्व परिस्थिति नहीं है। इस समय क्या किया जाय, क्या उचित होगा यह सोचने के लिये बहुत बुद्धिमानी की आवश्यकता नहीं है। अंग्रेजों के जमाने में ऐसा हुआ था। उस समय उन्होंने क्या किया, हमें अवगत है। एक प्रदेश में विद्रोह की संभावना दिखाई देने पर वहां शांतता और सुव्यवस्था प्रस्थापित करने के लिये दूसरे प्रदेश की सेना और पुलिस भेजी जाती थी। मलबार के विशेष पुलिस उत्तर में लाये जाते थे और गढवाली पलटण दक्षिण में। इस नीति को अपनाने से सब प्रकार के उग्रवाद को नष्ट किया जा सकता है। उग्रवादियों के पीछे पाकिस्तान और अमेरिका है, यह सही है। लेकिन अमेरिका और पाकिस्तान से डरने की क्या आवश्यकता है? हमारे सख्त कदम उठाने पर अमेरिका क्या, कितना और कहां तक कर सकती है, हम सोचें।

हम समझें कि अमेरिका सुपर पॉवर है। तृतीय जगत् के देश उनके प्यादे इस नाते काम करते हैं। अमेरिका की परिस्थितिवश कुछ मर्यादाएं (Circumstantial limitations) हैं। अफगाणिस्तान, हंगेरी और विएतनाम जैसा हिंदुस्थान छोटा नहीं, अपितु विशाल देश है। यहां भूमर्यादा विस्तृत है, साधन सामग्री (resources) विपुल है, इतनी बडी जनसंख्या है। इसलिये भारत में युद्ध–क्षेत्र बनाने का किसी सुपर पॉवर का प्रयास होते ही दुनिया का सत्ता संतुलन (balance of power)

बिगड जाने से तिसरा महायुद्ध का प्रारंभ अपरिहार्य है। श्रीगुरुजी ने कई बार कहा है कि सुपर पॉवर्स को युद्ध का रंगमंच बनाने के लिये हिन्दुस्थान योग्य देश लगता है। लेकिन तीसरा महायुद्ध छेडने की तैयारी आज न अमेरिका की है, न रूस की।

इसी कारण अमेरिका से डरने की और पंजाब में निष्क्रियता बरतने की शासन को आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। उग्रवादियों का उनका अपना दम कम है। वे पराक्रमी और बहादुर नहीं, गुंडे अवश्य हैं। किसी गुंडे के ललकारने पर भागनेवाले का पीछा करते समय गुंडा जैसा बहादुर कोई नहीं होता। लेकिन उसके ललकारने पर जो मजबूती से और पैर जमाकर खडा रहता है और उसको ही "आओ और अपनी ताकत आजमा के देखो", पुकार कर ललकारता है, तो गुंडे जैसा कोई कायर भी नहीं होता है। आज हम देखते हैं, यह उग्रवादियों की उनकी अपनी ताकत नहीं है, न ही भिंड्रावाले की ताकत थी।

कहा जाता है कि उग्रवादियों को पाकिस्तान का समर्थन है। पाकिस्तान का वल कितना है, हम सोचें। आधे पाकिस्तान का दूसरा राज्य बंगला देश बन जाने से वह पहले ही दुर्बल बन गया है। पश्चिमी क्षेत्र सिंध में जनरल झिया के विरुद्ध विद्रोह चल रहा है। बलुचिस्तान और पख्तूनिस्तान स्वतंत्र होना चाहते हैं। प्रत्यक्ष पश्चिमी पंजाब में उसका आसन स्थिर नहीं है, विरोधक बढ रहे हैं। झिया हमें क्यों आंखें दिखा रहा है, हम समझें। भिंड्रावाले उन दिनों में और आज झिया, अमेरिका के भरोसे हमें आंखें दिखा रहे हैं।

अपने पुराणों में एक मनोरंजक परंतु उद्बोधक घटना का वर्णन है। भगवान शंकर का दर्शन करने भगवान विष्णु अपने

गरुड वाहन पर पधारे। गले में सांप लेकर शंकर भगवान उनका स्वागत करने द्वार पर गये। सांप ने गरुड को देखा। सांप गरुड से बहुत डरता था परंतु शंकरजी के गले में रहने के कारण बडे ठाठ से वह गरुड को पूछता है, "क्यों भाई, तुम्हारा हाल तो ठीक है?" सांप की धृष्टता का कारण समझकर गरुड कहता है, "हां, हां। तुम जहां बैठे हो, वहां जब तक हो, सब ठीक ही है।" सांप जैसा ही इन उग्रवादियों का दम भी अमेरिका के भरोसे है। पाकिस्तान के ललकारने से विचलित होने की हमें आवश्यकता नहीं है।

उग्रवाद से हमें चिंतित होने का और एक कारण है। हम मानते हैं कि उग्रवाद का सही निराकरण सरकारी स्तरपर उचित कार्यवाही से ही हो सकता है। पंजाब में संघ ने कुछ करने के विषय में जब हम उपाय सोचते हैं तो उससे होनेवाले अपाय की भी चिंता करनी चाहिये। पंजाब की स्थिति सुधारने में मुख्य भूमिका सरकार को निभानी है। और किसी अन्य संगठन ने यह भूमिका लेने से अराजकता निर्माण होगी। जहां जनतन्त्र है वहां जनजागरण, जनआंदोलन, जनशिक्षा द्वारा सरकार पर दबाव लाया जा सकता है। यह काम स्वयंसेवकों द्वारा वहां हो रहा है। यही जनतंत्र के अनुकूल पद्धति है। इससे जादा कानून हाथ में लेने से रुग्ण का इलाज, रोग से अधिक खतरनाक जैसा होगा।

समस्या इतनी कठिन है कि सरकार उसे सुलझा नहीं सकती, यह बात गलत है। किन्तु सुलझाने में समाज की सुरक्षा और राष्ट्र की एकात्मता को प्रधानता न देकर सत्तारूढ दल अगले चुनाव को ही प्रधानता दे रहा है। कोई भी सख्त कदम

उठाने से वोट और वोट दाता बिगड न जायं, यही चिंता अधिक की जा रही है। गैरकेशधारियों के वोट तो मिलेंगे ही, केशधारी के कितने अधिक मिला पायेंगे, इसी चिन्ता में सत्तारूढ दल सोच रहा है। देश की सुरक्षा और एकात्मता की प्रधानता यह लक्ष्य न होकर, अगला चुनाव लक्ष्य है, यही वास्तविक समस्या है। इसी कारण उलझनें बढती जा रही हैं।

उग्रवाद-नियंत्रण : शासन के दृढ संकल्प का अभाव

वास्तव में उग्रवाद और हिंसाचार समाप्त करने हेतु सरकार की प्रबल इच्छाशक्ति, दृढ संकल्प ही नहीं है। (Will of the Govt. is lacking) एक पुरानी घटना का मुझे स्मरण होता है। उस समय मैं राज्यसभा का सदस्य था। अपनी सेना नागा विद्रोहियों को नियंत्रित नहीं कर पा रही थी। नागालैंड की कुल जनसंख्या केवल ४॥-४॥॥ लाख होकर भी वहां विद्रोहियों को नियंत्रित करना असंभव क्यों हो रहा है, ऐसा सवाल राज्यसभा में पूछने पर मंत्री महोदय ने उत्तर दिया कि प्राकृतिक रचना के कारण उस क्षेत्र का नियंत्रण कठिन है। वहां की सेना में एक अधिकारी मेरे पुराने मित्र थे। किसी काम से दिल्ली आने पर वे मुझसे मिले। मैंने कहा कि केवल ४॥ लाख नागा लोगों को अपनी सेना नियंत्रित नहीं कर सकती, क्षेत्र कठिन है ऐसा मंत्री महोदय कह रहे हैं, यह हमारी सेना के लिये शोभा देनेवाली बात नहीं है। उत्तर में उस मित्र ने कहा कि क्षेत्र कठिन रहने से नियंत्रण नहीं हो पा रहा है, यह गलत है। वहां हमें केंद्रीय शासन के आदेश हैं कि किसी के गोली चलाने पर ही हम गोली चलायें, अन्यथा नहीं। किसी ने गोली चलाने के पश्चात् उसपर गोली चलाने के लिये हम जीवित रहे, तो ही

यह संभव है। दिल्ली में भी C. R. P. जो कर सकती है, उसे वैसा करने से प्रतिबंधित किया जाता है। पंजाब में भी परिस्थिति नियंत्रण के बाहर नहीं है। आवश्यक अधिकार रिबेरो को दिये गये तो नियंत्रण सहज संभव है। अधिकार न रहने से ही पंजाब की परिस्थिति बिगड रही है और रिबेरो निराश हो रहे हैं। चुनाव का लक्ष्य सामने रखकर सुरक्षा के वारे में उपाय–योजना करना सुरक्षा से खिलवाड है। इसी से समस्या उलझ रही है। मूल समस्या इतनी कठिन नहीं है।

सुरक्षा समस्या हल करने के लिये सरकार की प्रबल इच्छा-शक्ति का (Will of the Govt.) मैंने उल्लेख किया। यह स्पष्ट करनेवाला उदाहरण जर्मनी का है। पहले महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी में बडी कमजोर सरकार सत्ताधिष्ठित हुई। कम्युनिस्ट दल का महत्त्व बढने लगा। प्रशिया क्षेत्र कम्युनिस्टों का गढ था। उनके सदस्य लोकसभा में थे। ये कम्युनिस्ट सदस्य उग्रवाद और आगजनी चलाते थे, लूटमार और हिंसक प्रदर्शन भी किया करते थे। ऐसे हिंसक समूह को नियंत्रित करने पुलिस ने गोली चलायी तो उनके ही सदस्य लोकसभा में " जनतंत्र का गला घोटा जा रहा है " ऐसी घोषणा देकर हो–हल्ला मचाते थे। व्हॉन पेपेन उस समय प्रधान मंत्री थे। कम्युनिस्टों के शोरगुल मचाने पर जांच आयोग की स्थापना की जाती थी और जांच की कार्यवाही में पुलिस अधिकारी को अपमानित किया जाता था। इससे पुलिस उदासीन बन गयी, कम्युनिस्टों का हौसला बढ गया। उग्रवाद भी बढ गया। ऐसी अवस्था में हिटलर सर्वेसर्वा बना। उस समय उग्रवाद और हिंसाचार कैसा रोका गया, यही सुस्पष्ट करने हेतु मैं यह उदाहरण दे रहा हूं। एक सीमित संदर्भ में उग्रवाद नियं-

त्रण करने का विषय लेकर ही इसका आशय हम समझें। हिटलर के सिद्धांत और कार्यपद्धति से हम पूर्णतः असहमत हैं।

जर्मनी में उग्रवाद–नियंत्रण के लिये हिटलर ने मार्शल गोअरिंग को गृहमंत्री नियुक्त किया। गोअरिंग ने सभी पुलिस अधिकारियों के संमेलन में केवल तीन मिनट भाषण किया। भाषण में उन्होंने कहा कि चुनाव में सफल होकर शासन की बागडोर हम संभाल रहे हैं। जर्मनी में कानून और व्यवस्था के लिये आप जिम्मेदार हैं। उनका अगला महत्त्वपूर्ण वाक्य था, " उग्रवादियों का नियंत्रण करने में 1 आपके कंधेपर की बंदूक से चलायी गयी प्रत्येक गोली मैंने अपनी बंदूक से चलायी है ऐसा समझो। मै प्रशिया का गृहमंत्री हूं।" इसका परिणाम तुरंत दृष्टिगोचर होने लगा। पेपेन की कमजोर नीति के कारण उदासीन, अपरिणामकारक बना पुलिस विभाग का मनोबल बढा और दो महिने के भीतर उग्रवाद समाप्त हो गया। शासन की प्रबल इच्छाशक्ति दर्शानेवाली यह नीति है। " कोई आपपर गोली चलाने तक आप गोली न चलाइये " यह अपने शासन का आदेश इच्छाशक्ति का अभावही सिद्ध करता है।

पंजाब में अपनी वर्तमान कार्यशैली

पंजाब में संघ अपनी शैली से परिणामकारक कार्य कर रहा हैं। वहां हर प्रदेश से प्रचारक भेजे गये हैं। बाहर से वहां गये प्रचारक शाखा संचालन कार्य करते हैं और वहां के ही पुराने प्रचारक जनजागरण और mobilization का कार्य कर रहे हैं। केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में लीन तथाकथित जनता को

---

1 " Every bullet fired from your rifle is a bullet fired from my rifle, and I am the Home Minister of Prussia."

इस अपने कार्य से संतोष नहीं होगा। केवल उन्हें संतुष्ट करने के लिये अपना संघ–कार्य प्रारंभ नहीं हुआ है। अपने कार्य की दिशा और संदर्भ " परंवैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्" ध्येय को ध्यान में रखकर जो उचित है वही हम करनेवाले हैं। इससे कभी कभी जनता में जो भ्रांत धारणा फैलती है उसे ठीक करना, अपने आत्मीय संबंध के कारण उनको समझाना यह अपना कार्य है, केवल मनोरंजन हमारा ध्येय नहीं है।

अपने मन में और भी प्रश्न निर्माण होते हैं। संभवतः प्रश्न, कुछ भ्रांतियों के कारण या समझदारी के अभाव में पैदा होते हैं। दिल्ली के संघ–शिक्षा वर्ग में नये प्रचारक–विस्तारकों के साथ मेरा अनौपचारिक वार्तालाप चल रहा था। इसी वर्ष प्रचारक जीवन स्वीकार करनेवाले एक स्वयंसेवक ने कहा कि "आपके समय प्रचारक का स्तर बहुत ऊंचा था। अब स्तर कुछ गिरा हुआ है।" मैंने कहा कि, " मुझे तो ऐसा नहीं लगता है। परंतु आपको ऐसा लगता है, इसका संभवतः कारण यह होगा। मा. भाऊरावजी, मा. बापूरावजी मोघे या हमारे जैसे प्रचारक को देखकर प्रचारक जीवन की एक प्रतिमा आपके सम्मुख रहती है। उस प्रतिमा के साथ आज निकला हुआ २०–२२ वर्ष आयु अवस्था का युवक अपनी स्वयं की तुलना करे तो उसे ऐसा लग सकता है। हमने प्रचारक जीवन में ४०–४५ साल व्यतीत किये हैं। ४०–४५ वर्ष दवाई मिश्रण तयार करनेवाला कंपौंडर भी कभी कभी नये डॉक्टर से अधिक जानता है। इतने वर्ष काम करने से हम यदि कुछ अधिक जानने लगे हैं तो इसमें क्या बड-प्पन है। आज के प्रचारक निकलनेवालों का स्तर और जिस समय हमने प्रचारक जीवन प्रारंभ किया उस समय के हमारे स्तर और

व्यवहार से तुलना कर देखो, कोई फर्क नजर नहीं आयेगा। शिक्षा पूर्ण कर जब मैं प्रचारक बना, ऐसी ही २०–२२ वर्ष की आयु थी। तरह तरह की गलतियां हमारे द्वारा होती थीं। ऐसी ही एक गलती हो जाने पर अपने एक कार्यवाह की पत्नी ने मुझसे कहा कि, "ठेंगडीजी, आप चिंता न करो, गलती हो जाती है, आप अभी अभी तो विश्वविद्यालयीन जीवन से बाहर आकर दुनिया के व्यवहार में पदार्पण कर रहे हो।" उन्होंने बडे अच्छे शब्दों में मेरी मूर्खता की ओर ही संकेत किया था।

अपना संघ–कार्य चल रहा है। कई पुराने काम करनेवाले थकजाते हैं। यह प्राकृतिक बात है, स्वाभाविक भी है। कोई कार्य-कर्ता जब अच्छा काम करता था तो अन्य स्वयंसेवकों को प्रचारक बनने को प्रवृत्त किया करता था। घरेलु परिस्थिति के कारण विवाह करना पडा। नौकरी आवश्यक थी, उसे स्वीकार किया। किसी कारण शाखा में जाना कम हुआ। ऐसी स्थिति में एकाध नया मुख्य शिक्षक बना लंडका जब संघ–स्थान पर चलने को कहता है तो भीतर का अपराधी–मन कहता है कि शाखा में जाना चाहिये। लेकिन इतने दिनों से नियमितरूप से शाखा में न जाने के कारण बना अपराधी मन आक्रमक बनता है। यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया स्वाभाविक मानी गयी है। यह आक्रमक मन स्वयं अपने समाधान में गटनायक या नये शाखा मुख्य शिक्षक को बोलता है, तुम बच्चे हो। तुमने तो संघ आज देखा है। संघ का तो वह जोरदार स्वरूप था, जो हमारे समय था। यह नया गटनायक या मुख्य शिक्षक सोचता है कि तब संघ बडा जोरदार होगा, परंतु आज तो एक एक स्वयंसेवक को संघ–स्थान पर उपस्थित करने में बडी कठिनाई हो रही है। कुछ रोमांचकारी

कल्पना प्रस्तुत होती है कि संघ का कभी सुवर्ण युग था। उस समय संघ में प्रवेश पाने के लिये कार्यालय के सामने लोगों की लंबी कतारें (Queue) खडी रहती होगी। यह परिस्थिति कभी भी नहीं थी। भारत विभाजन के पूर्व दो-ढाई वर्ष भारत के उत्तरी क्षेत्र में अपवादस्वरूप आत्मरक्षा की चिंता में, सभी लोग शाखा में आने लगे थे। संघ का ध्येय या सिद्धांत सोचकर नहीं, कहीं झगडे खडे हुए तो संघवालों के साथ रहने से आत्मरक्षा में सुविधा होगी यही भाव उनमें रहता था। "यह अपनी शक्ति नहीं है, सूजन बढ रही है" ऐसा श्रीगुरुजी ने उस समय कहा था। सीमित उत्तर क्षेत्र का दो-ढाई साल के कालखंड का अपवाद छोड दिया तो जब से मैं संघ में आया, एक एक स्वयंसेवक को शाखा में लाने में बडी तकलीफ होती थी। बहुत घना संपर्क रखना पडता था, खून-पसीना एक करना पडता था। उसके साथ एकात्म होकर, "जीवांत जीव मिसळावा" इस पद्धति से किसी को शाखा में लाना संभव होता था। केवल बौद्धिक वर्ग सुनकर संघ में प्रवेश करनेवाले पूरे हिंदुस्थान में पांच स्वयंसेवक भी नहीं होंगे।

कार्यपद्धति में यथोचित परिवर्तन

अपनी कार्यपद्धति पुरानी हो गयी, बुड्ढी बन गयी, उसमें कुछ नवीनता (novelty) आनी चाहिये, इस प्रकार की चर्चा आज चलती है। यह नया विषय नहीं है। कार्यपद्धति में परिवर्तन आना चाहिये, उसमें आज आकर्षण नहीं रहा है, प्रचलित कार्यपद्धति से युवकों को शाखा में कैसे लाया जा सकता है, यह शिकायत में जब से शाखा में आया तब से चल रही है और चर्चाविचार-विनिमय का विषय बनी है। १९४४ में नागपुर में ही हुई एक कार्यकर्ताओं की बैठक का मुझे स्मरण है। एक

कार्यकर्ता ने बडे आवेश के साथ कहा था कि इस कार्यपद्धति में आमूलचूल परिवर्तन यदि नहीं होगा तो मैं चेतावनी देता हूं कि सब संघकार्य टूट जायेगा। श्रीगुरुजी सब कार्यकर्ताओं की बैठक में चला यह प्रकट चिंतन सुन रहे थे। उन्होंने गंभीर भाव से केवल इतना ही कहा, " यदि सब कुछ टूट जाता है, तो मैं फिर से इसी शैली से कार्य प्रारंभ करूंगा।" (Well, if every thing will crumble down, I will begin from the beginning.)

कार्यपद्धति में परिवर्तन के सुझाव संघ के प्रारंभ से ही आते रहे और यथोचित परिवर्तन हुए भी हैं। आकर्षण के साथ ही कार्यक्रम संस्कारक्षम रहे, यही अपनी संघकार्यपद्धति की शैली रही है। यह परहेज रखते हुए कार्यक्रम में यथोचित परिवर्तन के लिये हमें आपत्ति नहीं है। कार्यक्रमों में ऐसे कई परिवर्तन हुए। शारीरिक कार्यक्रमों में पहले "खोच, डूब और ढोस" थी। उस के स्थान पर अब "भेद, वंचिका, प्रभेद" शब्दप्रणाली आयी। योगासन, समूहगान, नियुद्ध आदि नये कार्यक्रम हमने अपनाये हैं। अपनी संघ की प्रार्थना, जो प्रारंभ में मराठी–हिंदी में थी, १९४० में प्रचलित नयी संस्कृत प्रार्थना हमने अपनायी है। प्रारंभ के प्रातःस्मरण में परिवर्तन कर आज का भारतभक्ति स्तोत्र, एकात्मता मंत्र हमने स्वीकार किया है। इसलिये हमारी कार्य-पद्धति रूढीवादी, दकियानूसी है, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता, यह कथन सही नहीं है। हमारी कार्यपद्धति बहुत सोच समझकर तैयार की गयी है। इसका मूल आशय ध्यान में रखकर जो भी परिवर्तन के सुझाव आये, उनको स्वीकार किया गया है।

संघ–कार्य प्रारंभ होकर साठ साल पूर्ण हो गये है। आज विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि अपना हिंदु समाज संगठित

करने में संघ की कार्यपद्धति स्वयंपूर्ण है। इसको अपनाकर हम चलते हैं तो समाज संगठन करने के लिये किसी भी पूरक (supplimentary) कार्यपद्धति आवश्यक नहीं है। मोहवश शीघ्र फलदायी (snort–cut) कार्यपद्धति के चक्कर में हम न पडे। लोगों का अनुभव है कि जल्दबाजी से देरी होती है। (Short cut will cut you in short.) हमारी सफल सिद्ध हुई कार्य पद्धति छोडकर दूसरी कोई पर्यायी, वैकल्पिक, कार्यक्षम बनने योग्य, हमें संघ की लक्ष्यप्राप्ति करा सके ऐसी अन्य कार्यपद्धति नहीं है। जो हमें गाली देते हैं उनका भी अपनी कार्यशैली के विषय में यही निष्कर्ष है।

प्रसिद्धि–उपयुक्तता और मर्यादा

आज लोग सोचते हैं कि प्रचार–प्रसिद्धि से काम होता है। प्रसिद्धि से ताकत बढती है यह समझना गलत है। कुछ मात्रा में वृत्तपत्रों में प्रसिद्धि होनी चाहिये। प्रसिद्धि और पैसा, बारीश के समान माने गये हैं। बारीश के विषय में सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध होनेवाला optimum प्रमाण रहता है। उससे कम वर्षा होने पर सूखा अकाल होता है, अधिक हो जाने पर गीला अकाल रहता है। प्रसिद्धि और पैसे के बारे में ऐसा ही होता है। सर्वाधिक उपयुक्त प्रमाण से कम या अधिक हो जाने पर नुकसान होता है। थोडी बहुत प्रसिद्धि से कार्य को बढावा मिलेगा ऐसा सोचकर सद्-भावनावश कार्यकर्ता प्रसिद्धि का आश्रय लेता है। धीरे–धीरे अपना नाम, फोटो अखबार में देखने का चस्का लग जाता है और इससे काम की प्रसिद्धि, इस भावना में परिवर्तन होकर जिस कारण प्रसिद्धि हो जाय उतना ही काम करने की प्रवृत्ति हो जाती है। संगठन का पर्याय प्रसिद्धि है, ऐसा भी सोचा जाता है। इस कारण प्रसिद्धि तो बहुत होती है, संगठन कार्य नहीं हो पाता है।

संगठन की ओर ध्यान न देते हुए केवल प्रसिद्धि का चस्का मानवी दुर्बलताही है। अधिक प्रसिद्धि के कारण भी संगठन को हानि पहुंचती है। इसलिये उचित मात्रा में ही प्रसिद्धि होनी चाहिये। संघ जैसे कार्यशैली की नकल कर कोई अन्य काम खडा हुआ तो हमने उसे अपना शत्रु नहीं माना। ऐसे किसी काम के प्रति हमारे मन में द्वेष भावना नहीं थी। संजय गांधी ने संघ को समाप्त करने के प्रयास में संघ के खिलाफ बहुत प्रचार किया। इससे संघ पर असर नहीं होता है यह देखकर उन्होंने संघ के समान शाखा लगाने का निश्चय किया। संघ का तंत्र अपनाकर शाखा लगायेंगे, ऐसा उन्होंने घोषित किया। हजारों लोग और मंत्री बनने की इच्छा करनेवाले अनेक नेता एकत्र आये। दूसरे दिन अखबार में वृत्त और फोटो छापे गये। उन दिनों में संजय गांधी और उनके द्वारा किये गये किसी भी काम की भारत में सर्वाधिक प्रसिद्धि होती थी। दूसरे दिन शाखा वगैरेह कुछ भी नहीं लगी। क्योंकि लोग संगठन करने के लिये आये ही नहीं थे। इसका सीधा मतलब है कि संघ विरोधी विचारों की प्रसिद्धि इतनी अधिक करने पर भी संघ को समाप्त नहीं किया जा सकता, यह संजय गांधी ने अनुभव किया। इसी कारण संघ समाप्त करने के लिये संघ का ही तंत्र अपनाना पडेगा, इस निष्कर्षपर संजय पहुंच गये और संघ जैसी शाखा चलाने का प्रयास किया गया।

अपनी कार्यपद्धति में एक-एक बात बहुत सोच समझकर तय की गयी है। उसकी छोटी से छोटी बात में प्रभावी संस्कार छिपा है। इसमें संस्कारयुक्त आकर्षण और अपनी लक्ष्यप्राप्ति में उपयुक्त सिद्ध होनेवाला परिवर्तन अब तक होते आया है। और भी हो सकते हैं, इसका हम विचार करें। * *